प्राचीन-पद्य-प्रसून

संपादक
डा० फतहसिंह
और
श्री "मधुव्रत"

प्रकाशक
संस्कृत-सदन
कोटा

❀ विषय-सूची ❀

कबीर

परिचय—कबीर की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। सब से अधिक प्रचलित प्रवाद यह है कि ये विधवा ब्राह्मणी के पुत्र थे। वह लोकापवाद के भय से नवजात शिशु को लहरतारा के तालाब के पास फेंक आई। नीरू नामक जुलाहा उसे अपने घर उठा लाया और नीमा तथा नीरू दम्पति ने उसका पालन पोषण किया। यही बालक आगे चलकर कबीरदास हुआ। इन्होंने कई स्थानों पर स्वयं अपने को जुलाहा बतलाया है। श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि उस समय की जुलाहा जाति मुसलमान नहीं थी, वरन् यह योग भ्रष्ट गृहस्थों का एक समूह था, जो वस्त्र बुनने के व्यवसाय के द्वारा अपनी जीविका चलाता था। कबीर ने भी अपने को मुसलमान कहीं नहीं बतलाया है। वे अपने को सदैव 'ना हिन्दू ना मुसलमान' कहते रहे।

कबीर का जन्म काल ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा संवत् १४५६ माना जाता है। कहते हैं कि ये बचपन में ही 'राम राम' जपा करते थे और कभी कभी माथे पर तिलक भी लगा लेते थे। उस समय साधारण जनता पर स्वामी रामानन्द का प्रभाव बहुत अधिक था। कबीर ने भी उनका शिष्य बनने की इच्छा प्रकट की, परन्तु नीच जाति का होने के कारण रामानन्द ने अस्वीकार कर दिया। एक दिन कबीर एक पहर रात रहते ही उस घाट की सीढ़ियों पर जा लेटे, जिस पर रामानन्द जी स्नान करने आया करते थे। अँधेरे में रामानन्द जी के पैर की ठोकर कबीर को लग गई और वे 'राम राम' कह उठे। कबीर ने इसी को गुरु मंत्र मान लिया और वे अपने को रामानन्द का शिष्य कहने लगे।

कबीर पढ़े लिखे नहीं थे। उन्होंने सत्संग के द्वारा ही ज्ञान प्राप्त किया। हिन्दू महात्माओं के अतिरिक्त इन्होंने मुसलमान सूफी सन्तों का समागम भी किया था, पर इन पर सबसे अधिक प्रभाव रामानन्द जी के उपदेशों का ही पड़ा। इन्होंने 'कबीर-पन्थ' नाम से अपना स्वतंत्र मत स्थापित किया, जिसके अनुयायी हिंदू और मुसलमान दोनों धर्मों के लोग हुए।

ग्रन्थ— कबीर ने ग्रन्थ रचना की दृष्टि से कोई पुस्तक नहीं लिखी। अपने मत का प्रचार तथा सिद्धांतों की पुष्टि करने के लिए वे जो कुछ गाते या कहते थे, उसे इनके पढ़े लिखे शिष्य लिख लेते थे। इस प्रकार इनके प्रधान शिष्य धर्मदास ने इनकी 'वाणी' का संग्रह 'बीजक' नाम से किया। इसके तीन भाग हैं रमैनी, सबद और साखी। इसमें वेदांत तत्व, हिंदू मुसलमानों को फटकार, संसार की अनित्यता, हृदय की शुद्धि, मूर्ति पूजा, तीर्थाटन आदि की असारता आदि अनेक प्रसंग हैं।

कबीर मत— कबीर बड़े दूरदर्शी थे। उन्होंने देखा कि इस्लाम धर्म की कट्टरता के कारण हिंदुओं का हृदय मुसलमानों से निरंतर दूर हटता जा रहा है। अब मुसलमान भारत के निवासी हो गये थे। दोनों जातियों का विरोध दूर होने की आवश्यकता थी। विरोध को मिटाने का एक मात्र साधन दोनों धर्मों की एकता ही हो सकती थी। अतः कबीर ने ऐसे पंथ की स्थापना की, जिसमें तत्कालीन सभी मतों और धर्मों के तत्वों का समावेश था। उन्होंने भारतीय ब्रह्मवाद, सूफियों का रहस्यवाद, नाथ पंथियों का हठयोग, वैष्णवों का अहिंसावाद और मुसलमानों का एकेश्वरवाद—इन सब को मिलाकर कबीर-पंथ खड़ा किया।

कबीर ने निर्गुण की उपासना पर जोर दिया। उनके अनुसार ब्रह्म निर्गुण और सगुण से परे है। पर उपासना के क्षेत्र में ब्रह्म में गुणों का आरोप हो ही जाता है। इसी लिए कबीर के वचनों में कहीं तो

निर्गुण ब्रह्म सत्ता का संकेत मिलता है और कहीं सोपाधि ईश्वर की झलक। कबीर-मत में गुरु का बड़ा ऊँचा स्थान है। गुरु के द्वारा ही ब्रह्म का ज्ञान होता है, अतः गुरु को 'गोविन्द' से भी बड़ा माना गया है। माया, जीव, ब्रह्म, तत्त्वभाव इत्यादि का परिचय इन्होंने हिन्दू महात्माओं के संपर्क से प्राप्त किया और इनको अपने मत में स्थान दिया।

ब्रह्म की प्राप्ति के लिए हठयोगियों की इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना नाड़ियाँ; षट्चक्र और कुण्डलिनी को जाग्रत करने की विचार धारा इन्हें नाथों की परम्परा से प्राप्त हुई। पिंड में 'ब्रह्माण्ड' की भावना का प्रचार इन्होंने नाथों की शब्दावली में ही किया। सूफियों के प्रेमतत्व का समावेश करके इन्होंने अपने सिद्धांतों को सरसता से बहुत कुछ बचा लिया।

कबीर-मत को इसीलिए हिंदू और मुसलमान दोनों धर्मों के मनुष्यों ने माना, पर हिंदुओं में विद्वान शास्त्रज्ञ ब्राह्मण तथा मुसलमानों के मुल्ला-मौलवी सदैव उनका विरोध करते रहे। कबीर-पंथ में धर्म के वे गूढ़ तत्व नहीं मिलते जो नाना शास्त्रों के अध्ययन स्वरूप प्राप्त हो सकते हैं। उसमें सब मतों की सुनी-सुनाई बातों के आधार पर केवल उन्हीं सिद्धांतों का समावेश किया गया है, जो अपढ़ या कम पढ़े लोगों को आकर्षित कर सकते थे। इसीलिए इनके मतानुयायी निम्न जातियों के साधारण पढ़े लिखे लोग ही मिलते हैं।

समाज सुधारक कबीर—कबीर ने तत्कालीन समाज प्रचलित मतों से कुछ न कुछ लेकर जहाँ एक सामान्य पंथ का नाम डाला और सभी सम्प्रदायों के अनुयायियों को समीप लाने का प्रयत्न किया; वहां उन्होंने दोनों जातियों की रूढ़ियों और अंध विश्वासों को भी मिटाने का प्रयत्न किया। धर्म के मार्ग में उन्हें बाह्य आडम्बर पसन्द नहीं था। भोले-भाले धर्म भीरु लोगों को अंधानुकरण करने की आज्ञा देने वाले पंडितों और मौलवियों के वे सदैव शत्रु रहे। उन्होंने एक ओर हिंदुओं

का मूर्ति पूजा का खण्डन किया, दूसरी ओर मुसलमानों को हिंसा-वृत्ति के लिये फटकार बताई। कदाचित उनका अनुमान था कि मुसलमान मूर्ति पूजा के और हिंदू हिंसा के विरोधी हैं। अतः दोनों जातियों में से उक्त दोनों विरुपता को निकाल देने पर एकता का काम सरल हो जायगा।

जाति-पाँति के भेद-भाव के ये कट्टर विरोधी थे। यद्यपि इस उदारता का अंकुर इनके हृदय में स्वामी रामानन्द जी के उपदेशों तथा कार्यों से ही जम गया था, तथापि इन्होंने उसे और भी विकसित करके सब जातियों के लोगों को अपना उपदेश दिया और सभी को अपनी शिष्य-मण्डली में सम्मिलित किया।

कबीर का रहस्य वाद—गुह्य या रहस्य की भावना कबीर ने नाथों से प्राप्त की। निर्गुण की उपासना में रहस्य भावना का आजाना स्वाभाविक है। भक्ति के क्षेत्र में तो भक्त ब्रह्म के साकार रूप का अपनी इन्द्रियों से अनुभव कर सकता है, पर उपासना-क्षेत्र में उसका ऐसे ब्रह्म से काम पड़ता है, जिसके न हाथ हैं, न पैर, न रूप, न आकार। उपासक या साधक के लिए वह असीम एक रहस्य ही बना रहता है। भारतीय दर्शन की अद्वैत की भावना ने कबीर जैसे संतों के हाथों में पड़कर रहस्य-वाद का रूप धारण किया। रहस्यवाद का मुख्य तत्व जीव और ब्रह्म की एकता है। जब तक जीव को ब्रह्म की अनुभूति, तादात्म्य या साक्षात्कार नहीं हो जाता तब तक वह उसके विरह में छटपटाता रहता है। यह विरह-वेदना जितनी तीव्र होती है, उतनी ही शीघ्र ब्रह्म की अनुभूति की सम्भावना होती है। जीव को विरह-वेदना तभी होती है, जब उसे यह ज्ञान हो जाता है कि वह ब्रह्म का ही अंश या पुत्र है और उसका चरम लक्ष्य उसको प्राप्त करना है। कबीर के मतानुसार इस प्रकार के ज्ञान की ज्योति जगाने वाला 'सद्गुरु' है। इस प्रकार सद्गुरु के द्वारा ज्ञान प्राप्त कर जीव ब्रह्म के विरह में

व्याकुल होता है और उसे रस की अनुभूति होती है। अनुभूति का आनन्द अवर्णनीय और अकथनीय होता है। कबीर के शब्दों में यह 'गूँगे का गुड़' है। साधक उसके स्वाद का वर्णन नहीं कर सकता। आनन्द की स्थिति व साक्षात्कार स्थिति में आने के पश्चात् स्वयं साधक भी अपनी अनुभूति का रहस्य ही समझता है और उसका वर्णन न कर सकने के कारण सर्व साधारण के लिए वह साधक भी रहस्यमय हो जाता है।

कबीर ने उस रहस्य को प्रकट करने के लिए रूपकों का आश्रय लिया। यद्यपि उस अलौकिक अनुभूति का वर्णन लौकिक शब्दों में करना अत्यन्त कठिन होता है, तथापि रूपकों के द्वारा कबीर ने उसका आभास मात्र देने का प्रयत्न किया। यही कारण है कि कबीर के रूपक साधारण लोगों के लिए जटिल हो गए हैं।

भाषा और शैली —कबीर ने उत्तरी भारत में घूम-घूम कर प्रचार किया, इसलिए कई प्रान्तीय भाषाओं के शब्द इनकी 'वाणी' में मिलते हैं। पंजाबी, राजस्थानी, पूर्वी भाषाओं का इन पर स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनकी भाषा को 'सधुक्कड़ी' कहा है। व्याकरण और छन्द शास्त्र की दृष्टि से इनकी रचना दोषपूर्ण है। अपढ़ होने के कारण यह स्वाभाविक भी है। फिर भी इनका प्रभाव आज शिक्षित और अशिक्षित सब प्रकार के लोगों पर है।

कबीर

—: दोहे :—

कबीर डग मग क्या करहि, कहा डुलावहि जीव ।
सब सुख को नाइ को, राम नाम रस पीव ॥ १ ॥

कबीर सब ते हम बुरे, हम तजि भलो सबु कोई ।
जिनि ऐसा करि बूझिया, मीतु हमारा सोई ॥ २ ॥

कबीर सोई मारि यै, जिह मूयै सुख होइ ।
भलो भलो सबु को कहै, बुरो न मानै कोइ ॥ ३ ॥

संत मुए क्या रोइयें, जो अपने मिहि जाइ ।
रोवहु साकतु बापुरो, जो हाटें हाट बिकाय ॥ ४ ॥

कबीर माया डोलनी, पवन झकोलन हारु ।
संतहु माखनु खाइया, छाछि पीये संसारु ॥ ५ ॥

कबीर माया चोरटी, मुसि मुसि लाव हाटि ।
एकु कबीरा ना मुसै, कीनी बारह बाट ॥ ६ ॥

जिसु मरने ते जग डरै, मेरे मन आनंदु ।
मरने ही ते पाइयै, पूरन परमानन्दु ॥ ७ ॥

मरता मरता जग मुआ, मरि भी न जानिया कोय
ऐसे मरने जो मरै, बहुरि न मरना होय ॥ ८ ॥

कबीर बेड़ा जरजरा, फूटे छेंक हजार।
हरुये हरुये तरि गये, डूबे जिन सिर भार ॥ ९ ॥

हाड़ जरे जिव लाकरी, केस जरे जिव घासु।
इहु जगु जरता देखि कै, भयो कबीर उदासु ॥ १० ॥

कबीर गरबु न कीजिए, रंकु न हँसिये कोइ।
अजहुँ सु नाव समुद्र महिं, क्या जानिव क्या होइ ॥ ११ ॥

जो हम जंतु बजावते, टूटि गई सब तार।
जंतु बिचारा क्या करै, चलै बजावन हार ॥ १२ ॥

जग बाँधियौ जिह जेवरी, तिह मति बंधहु कबीर
जैहेहि आटा लौन जिउ, सोन समान सरीर ॥ १३ ॥

कबीर सूता क्या करहि, बैठा रहु अरु जागु।
जाके संग ते बीछुरा, ताहि के संग लागु ॥ १४ ॥

कौड़ी कौड़ी जोरि कै, जोरे लाख करोरि।
चलती बार न कुछ मिल्यो, लई लँगोटी तोरि ॥ १५ ॥

बैसनी हुआ तो क्या भया, माला मेली चार।
बाहरि कं·नु बारहा, भीतरि भरी अँगार ॥ १६ ॥
रोड़ा होइ रहु बाट का, तजि मन का अभिमानु।
ऐसा कोई दासु होइ ताहि मिलै भगवानु ॥ १७ ॥
रोड़ा हुआ तो क्या भया, पंथी कउ दुख देइ।
ऐसा तेरा दासु है, जिउ धरनी महि खेह ॥ १८ ॥

खेह हुई तो क्या भया जौ उंड़ लागे अंग।
हरि जनु ऐसा चाहियें, जिउ पानी सरबग ॥१९॥

पानी हुआ तो क्या भया, सीरा ताता होइ।
हरिजनु ऐसा चाहिए, जैसा हरि ही होइ ॥२०॥

परभाते तारे खिसहि, तिउ इहि खिसै सरीरु।
ए दुइ आखर ना खिसहि, सो गहि रहिओ कबीर॥ २१ ॥

जा घर साध न सेविअहि हरि की सेवा नाहि।
ते घर मरघट सारखे, भूत बसहि तिन माँहि ॥२२॥

तूँ तूँ करता तू हुआ, मुझ महि रहा न हूँ।
आपा पर का मिटि गया, जत देखूँ तत तूँ ॥२३॥

काया कजली बन भया, मनु कुँचरु मय मंतु।
अंकुश ग्यानु रतनु है, खेवट बिरला संतु ॥२ ॥

तरवर रूपी राम है, फल रूपी बैरागु।
छाया रूपी साधु है, तजिया बाद-बिवदु ॥२५॥

नीके लोइन करि रहउ, ते साजन घट माँहि।
सब रस खेलत पीउ सउ, किसी लखावउ नाहि। २६॥

बामनु गुरु है जगत का, भगतन का गुरु नाहि।
अरझि उरझि क पचि मुआ, चारहु वेदहु माँहि ॥२७॥

कबीर राम राम कहु कहिबे माँहि बिबेक।
एक अनेकहु मिलि गया, एक समाना एक ॥२८॥

गूँगा हूआ बावरा, बहरा हूआ कान।
पावहु ते पिंगल भया, मारया सतगुरु बान ॥ २६ ॥

भली भई जो भय परया, दिशा गई सब भूलि।
ओरा गरि पानी भया, जाइ मिल्यो ढलि कूलि ॥ ३० ॥

चकई जब निसि बीछुरै, आइ मिलै परभाति।
जो नर बिछुरे राम सिउ ना दिन मिलै ना राति ॥ ३१ ॥

पद

(१)

साधो सो सत गुरु मोहि भावे।
सत्त प्रेम का भर भर प्याला, आप पिवै मोंहि प्यावै।
परदा दूरि करे आँखिन का, ब्रह्म दरस दिखलावै।
जिस दरस में सब लोक दरसै, अनहद सबद सुनावै।
एकहि सब दुख-दुख दिखलावे, सब्द में सुरति समावे।
कहै कबीर ता को भय नाही, निर्भय पद पर सावै ॥

(२)

मोकों कहाँ ढूंढे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद ना काबे कैलास में।
ना तो कौन क्रिया-कर्म में, नही योग बैराग में।
खोजी होय तो तुरतै मिलि हौं, पल भर की तालाश में।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वासों की साँस में ॥

(३)

रहना नहिं देस बिराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया, बूँद पड़े घुल जाना है।
यह संसार काँट की बाड़ी, उलझ पुलझ मरि जाना है।
यह संसार झाड़ और झाँखर, आग लगे बरि जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है।

(४)

सुवटा डरपत रहु मेरे भाई, तोहि डराई देत बिलाई।
तीनि बार रूँधे इक दिन में, कबहुंक खता खवाई।
या मँजारी मुगध न माने, सब दुनियाँ डहकाई।
राणा राव रंक को ब्यापै, करि-करि प्रीति सवाई।
कहत कबीर सुनहु रे सुवटा, उबरे हरि सरनाई।
लाखों माँहि तें लेत अचानक, काहू न देत दिखाई॥

(५)

माया महा ठगनी हम जानी।
तिरगुन फाँसि लिये कर डोलै, बोलै मधुरी बानी।
केसव के कमला होइ बैठी, सिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरत होइ बैठी, तीरथ हू में पानी।
जोगी के जोगिन होइ बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा होइ बैठी, काहू के कौड़ी कानी।

मक्खन के मक्खिन होइ बैठो, मद्धा के मद्धानी।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, यह सब अकथ कहानी॥

(६)

मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होइ रे।
मैं कहता हौं आँखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी।
मैं कहता सुरझावन हारी, तू राख्यो अरुझाई रे।
मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोई रे।
मैं कहता निर्मोही रहियो, तू जाता है मोही रे।
सतगुरु धारा निरमल बाहै, वा में काया धोई रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, तब ही वैसा होई रे॥

(७)

मोरी चुनरी में परि गयो दाग पिया।
पाँच तत्त की बनी चुनरिया; सोरह सै बंद लागे जिया।
यह चुनरी मके तें आई; ससुरे में मनुवाँ खोय दिया।
मलि मलि धोई दाग न छूटे, ज्ञान को साबुन लाय पिया।
कहै कबीर दाग कब छुटिहैं जब साहब अपनाय लिया।

(८)

साधो, देखो जग बौराना।
साँची कहौं तो मारन धावैं झूँठे जग पतियाना।
हिन्दू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।

आपस में दोउ लड़े मरतु हैं, मरम कोइ नहिं जाना।
बहुत मिले मोंहि नेमी धर्मी, प्रात करैं असनाना।
आतम छाँडि पषाने पूजें, तिनका थोथा ज्ञाना।
बहुतक देखे पीर औलिया, पढ़े किताब कुराना।
करैं मुरीद कबर बतलावैं, उनहूँ खुदा न जाना।
हिन्दू की दया, मेहर तुरकन की दोनों घर से भागी।
वह करे जिबह वाँ झटका मारे आग दोउ घर लागी।
या विधि हँसत चलत हैं हमको आप कहावें स्याना।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, इनमें कौन दिवाना।

(६)

नाम-अमल उतरै ना भाई।
और अमल छिन छिन चढ़ि उतरे, नाम-अमल दिन बढ़े सवाई।
देखत चढ़े सुनत हिय लागे, सुरत किये तन देत घुमाई।
पियत पियाला भये मतवाला, पायो नाम मिटी दुचिताई।
जो जन नाम-अमल रस चाखा तर गई गनिका सदन कसाई।
कह कबीर गूँगे गुड़ खाया बिन रसना का करैं बड़ाई।

(१०)

वे दिन कब आवेंगे माइ।
जा कारन हम देह धरी है मिलि बो अंगि लगाइ।
हौं जानूं जब हिल मिल खेलूं तन मन प्रान समाइ।
या कामना करो पर पूरन समरथ हो राम राइ।

।.हि उदासी माधो चहे चवयन रैन विहाइ।
सेज हमारी स्यंव भई है, जब सोऊँ तब खाइ।
यहु अरदास दास की सुनिये, तन की तपनि बुझाइ।
कहै कबीर मिले जे मई, मिलि करि मंगल गाइ॥

(११)

अपन पौ आप ही विसरो

जैसे सोनहा काँच मन्दिर में भरमत भूँकि मरो।
जो केहरि वपु निरखि कूप जल प्रतिमा देखि परो।
ऐसेहि मद गज फटिक सिला पर दसननि आनि अरो।
मरकट मुठी स्वाद ना बिसरे घर घर नटत फिरो।
कह कबीर ललनी के सुवना तोहि कौने पकरो।

(१२

अरे इन दोउन राह न पाई।

हिन्दू अपनी करे बड़ाई, गागर छुवन न देई।
वेस्या के पायन तर सोवे, यह देखो हिंदुआई।
मुसलमान के पीर औलिया, मुर्गी-मुर्गा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहैं, घरहि में करैं सगाई।
बाहर से यक मुर्दा लाये धोय धाय चढ़वाई।
सब सखियाँ मिल जेंवन बैठीं, घर भर करे बड़ाई।
हिन्दुन की हिंदुवाई देखी, तुरकन की तुरकाई।
कहै कबीर सुनो भाई साधो कौन राह है जाई॥

मलिक मुहम्मद जायसी

जीवन परिचय—जायसी का जन्म उनके 'आखिरी कलाम' के आधार पर सन् १४९२ के लगभग ठहरता है। कवि ने अपने प्रसिद्ध काव्य 'पदमावत' की कथा का आरम्भ सन् १५२० के लगभग किया था, परंतु उसमें तत्कालीन सम्राट शेरशाह को प्रशंसा मसनवी-परम्परा के अनुकूल कवि ने की है। शेरशाह का राज काल सन् १५४० से प्रारम्भ होता है। इससे प्रकट होता है कि इस ग्रंथ की रचना एक समय में न होकर प्रारम्भ करने के १९–२० वर्ष पश्चात् समाप्त हुई थी।

ये जायस के रहने वाले थे। इन्होंने कहा है 'जायस नगर धरम अस्थान्। तहाँ आई कवि कीन्ह बखान्।' इससे प्रकट होता है कि ये जायस छोड़ कर चले गये थे। फिर वहीं लौट कर इन्होंने 'पदमावत' की रचना की। कुछ विद्वानों का कहना है कि जायसी किसी और नगर से जायस में आकर बसे थे, पर कई प्रमाणों से यह सत्य नहीं जान पड़ता।

जायसी कुरूप और काने थे। 'मुहम्मद बाईं दिसि तजा, एक सरवन एक कान' के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि ये बाईं आँख और बाएँ कान से बेकार थे। इनके रूप को देखकर शेरशाह के हँसने की बात प्रसिद्ध है। कहते हैं कि उस समय जायसी ने 'मोहिका हँसे सि, कि को हरहि !' कहकर शेरशाह को लज्जित किया था।

ये गृहस्थ किसान के रूप में जायस में रहते थे। आरम्भ से ही बड़े ईश्वर भक्त और साधु प्रकृति के थे। कहते हैं कि जायसी के पुत्र थे, पर वे मकान के नीचे दबकर, या ऐसी ही किसी दुर्घटना से मर गये। इससे जायसी विरक्त हो गये और फकीर होकर घूमने लग गये।

अमेठी के राजा रामसिंह इनका बड़ा सम्मान करते थे। ये निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परम्परा में थे। इनके गुरु शेख मुहीउद्दीन थे। सैयद अशरफ भी इनके दीक्षा-गुरु कहे जाते हैं। सूफी फकीरों के सिवा हिन्दू साधुओं से भी इनका घनिष्ट सम्पर्क था। हठयोग, वेदान्त, रसायन आदि की बहुत सी बातें हिंदू साधुओं के संसर्ग से ही इन्होंने सीखीं।

ये बड़े भावुक भगवद्भक्त थे। सच्चे भक्त का प्रधान गुण दैन्य उनमें पूरा पूरा था। गर्वोक्तियों से ये बहुत दूर थे। अपने को सर्वज्ञ मानकर पंडितों और मौलवियों का तिरस्कार करने की प्रवृति इनमें नहीं थी। ये तो अपने को पंडितों का 'पछलगा' कहते थे—

"हौं पंडितन्ह केर पछलगा। किछु कहि चला तबल देइ डगा॥" जायसी को सिद्ध योगी मानकर इनके कई शिष्य होगये, जो पदमावत को गा-गा कर भीख माँगा करते थे।

ग्रन्थ—जायसी का मृत्युकाल सन् १५४२ के लगभग माना जाता है। जायसी द्वारा रचित तीन ग्रंथ प्रसिद्ध हैं— पदमावत, अखरावट और आखिरी कलाम। पदमावत में सूफीमत के सिद्धान्तों के आधार पर लौकिक कहानी के द्वारा ईश्वरीय प्रेम की व्यंजना है। अखरावट में वर्णमाला के एक एक अक्षर को लेकर सिद्धांत सम्बंधी तत्वों से भरी चौपाइयाँ कही गई हैं। 'आखिरी कलाम' में 'कयामत' (प्रलय) का वर्णन है।

सूफीमत—जायसी के काव्य को समझने के लिए सूफी मत के सिद्धांतों को जान लेना आवश्यक है। सूफी एक प्रकार के फकीर होते थे, जो जीव और ब्रह्म की एकता के सिद्धांत को मानकर उस असीम के विरह में मग्न इधर उधर घूमा करते थे। आरम्भ में ये फकीर सफेद ऊन का लबादा पहना करते थे, जिसे सफूत कहते थे। कहते हैं कि इसी से

ये सूफी कहलाये। एक ओर ये इस्लाम के एकेश्वर वाद को मानते थे दूसरी ओर प्रेम तत्व का समावेश कर ब्रह्म मय होने की भावना करते थे। इसलिए कट्टर मुसलमान इन्हें मुसलमान नहीं समझते थे। इनकी अद्वैत की भावना भारतीय दर्शन के अद्वैतवाद से कुछ मिलती जुलती थी। अंतर केवल इतना ही था कि भारतीय पद्धति ब्रह्म को पति या पिता रूप में मानकर उपासना करने की आज्ञा देती है, और सूफियों ने ब्रह्म को स्त्री रूप तथा जीव को पुरुष रूप मानकर साधना की। भारतीय दर्शन की 'माया' सूफियों के यहाँ आकर 'शैतान' में परिवर्तित होगई। सूफी मत में प्रेम तत्व की प्रधानता है। विरह की उत्कटता के साथ प्रियतमा (ब्रह्म) की प्राप्ति सन्निकटतर होती जाती है। इसीलिए सूफी संतों की रचना में विरह वर्णन का प्रमुख स्थान है।

जायसी का रहस्यवाद—जायसी का प्रसिद्ध ग्रंथ पदमावत कवि के सिद्धांतों की कसौटी है। इन्होंने ग्रंथ के अंत में सारी कहानी को अन्योक्ति कह दिया है और बीच बीच में भी उनका प्रेम वर्णन लौकिक पक्ष से अलौकिक पक्ष की ओर संकेत करता हुआ जान पड़ता है। क्या संयोग, क्या वियोग, दोनों में कवि ने आध्यात्मिक स्वरूप का आभास दिया है। लौकिक सौंदर्य का वर्णन करते करते कवि की दृष्टि उस चरम सौंदर्य की ओर चली जाती है। कवि ने प्रेम-पथिक रत्न सेन में सच्चे साधक का स्वरूप दिखाया है। पद्मिनी ही चैतन्य स्वरूप परमात्मा है, जिसकी प्राप्ति का मार्ग बताने वाला सुआ है उस मार्ग में अग्रसर होने से रोकने वाली नागमती सांसारिक जंजाल है। राघव चेतन शैतान है, जो प्रेम का ठीक मार्ग न बतला कर इधर उधर भटकाता है। अलाउद्दीन माया स्वरूप है। इस प्रकार सारी कहानी से ईश्वरोन्मुख प्रेम की व्यंजना होती है। यह प्रेम व्यंजना निर्गुण और अतीन्द्रिय के प्रति होने के कारण रहस्यवाद की कोटि में आती है। जायसी का रहस्यवाद कबीर के रहस्यवाद की भाँति रूखा और हठयोगियों की तरह साधनात्मक नहीं है।

प्रेम और विरह की प्रधानता होने के कारण उसमें माधुर्य और सरसता का समावेश है। जायसी ज्ञान मार्गी संतों की भाँति ब्रह्म की प्राप्ति के लिए समाधि और प्राणायाम की व्यवस्था नहीं देते, वरन् प्रेम की प्रगाढ़ता पर बल देते हैं। उनके साधक को परम लक्ष्य की प्राप्ति में अनेक बाधाएँ हैं, किन्तु उसका अटल और निश्चल प्रेम उसे उसके ध्येय पर पहुँचा ही देता है।

जायसी में रहस्यवाद का स्फुरण पूरा-पूरा हुआ है। कबीर पर इस्लाम के कट्टर एकेश्वरवाद और वेदांत के मायावाद का रूखा संस्कार था। उनमें प्रकृति के प्रसार में भगवान के दर्शन करने वाली भावुकता न थी। अतः कबीर में जो कुछ रहस्यवाद है, वह भावुक कवि का रहस्यवाद नहीं है। हिन्दी के कवियों में जायसी ही ऐसे हैं, जिनका रहस्यवाद रमणीय और सुन्दर अद्वैती रहस्यवाद है और जिसमें भावुकता बहुत ही उच्चकोटि की है।

काव्य-विशेषता—आध्यात्मिकता के आवरण को हटाकर यदि जायसी के काव्य को देखें तो वह शुद्ध प्रेम काव्य के रूप में दृष्टिगोचर होता है, जिसमें संयोग और विप्रलम्भ दोनों प्रकार के शृङ्गार के भेदों का पूर्णतया सन्निवेश मिलता है। अन्य भक्त कवियों की भाँति जायसी ने संयोग शृङ्गार का उतना विशद वर्णन नहीं किया, जितना वियोग का। जायसी का विरह वर्णन कहीं कहीं अत्युक्ति पूर्ण होने पर भी मज़ाक की सीमा तक नहीं पहुँचने पाया है, उसमें गाम्भीर्य बना हुआ है। नागमती का विरह-वर्णन हिन्दी-साहित्य में अद्वितीय वस्तु है। उसके विरह से पशु-पक्षी, पेड़ पल्लव सब व्याकुल हैं। यहाँ तक कि एक पक्षी से तो रहा नहीं जाता और वह नागमती से उसके दुःख का कारण पूछ बैठता है। विरह की ऐसी व्यापकता, जिसमें जड़-चेतन सब अपने होकर सहानुभूति प्रदर्शित करने लगें और विरही अपना हृदय खोलकर उनके सामने र- लग जाए, जायसी के ही काव्य में मिलती है अन्यत्र नहीं।

शृङ्गार की प्रधानता के साथ जायसी के काव्य में अन्य भावों और रसों का भी समावेश है। गोरा बादल के युद्ध वर्णन के द्वारा वीररस की व्यञ्जना भी कवि ने की है। शस्त्रों की चमक और झनकार, हाथियों की रेल-पेल आदि का वर्णन उसमें मिलता है।

भाषा-शैली— कबीर ने अपना प्रसिद्ध काव्य पदमावत तथा शेष दो काव्य दोहे और चौपाइयों में लिखे। इन्होंने सात सात अर्द्धालियों के बाद एक दोहा रक्खा है। प्रबंध-काव्य के लिए चौपाई और दोहा कितने उपयुक्त छंद हैं, यह इसी से सिद्ध होजाता है कि आगे चलकर महाकवि तुलसीदासजी ने अपना प्रसिद्ध काव्य रामचरित मानस इसी शैलीमें लिखा।

जायसी ने अवधी भाषा में काव्य-रचना की। जायसी अधिक पढ़े लिखे नहीं थे। अतः उनकी भाषा में ठेठ अवधी के दर्शन होते हैं। कई शब्दों के तत्कालीन रूप द्वारा अवधी भाषा से निकल चुके हैं। इसी से उनके काव्य हिन्दी साहित्य में देर से प्रकाश में आये। अवधी भाषा और चौपाई छंद का संबंध जायसी के द्वारा ऐसा घनिष्ठ हो गया कि तुलसी ने भी अवधी भाषा को ही अपने 'मानस' की भाषा बनाया। यह दूसरी बात है कि तुलसी की भाषा, जायसी की अपेक्षा साहित्यिक अधिक थी।

मलिक मुहम्मद जायसी

गोरा-बादल युद्ध

सोरह से चंडोल सँवारे । कुँवर सँजोइल कै बैठा रे ॥
पद्मावति कर सजा विवानू । बैठ लोहार न जानै भानू ॥

रचि विवान सो साजि सँवारा । चहुँ दिशि चँवर करहिं सब ढारा ॥
साजि सबै चंडोल चलाए । सुरंग, ओहार, मोती बहु लाए ॥
भए सँग गोरा बादल बली । कहत चले पद्मावति चली ॥
हीरा रतन पदारथ झूलहिं । देखी विवान देवता भूलहिं ॥
सोरह से सँग चली सहेली । कँवल न रहा, और को बेली

राजहिं चली छोड़ाबै । तहँ रानी होइ ओल ॥
बीस सहस तुरि खिंची संग, सोरह से चंडोल ॥

राजा बँदि जेहि के सौंपना । गा गोरा तेहि पहँ अगमना
टका लाख दस दीन्ह अँकोरा । बिनती कीन्हि पाँय गहि गोरा ॥
बिनवा बादशाह सौं जाई । अब रानी पद्मावति आई ॥
बिनती करै आइ हौं दिल्ली । चित उर के मोहिं स्यों है किल्ली ॥
बिनती करै जहाँ है पूंजी । सब भँडार के मोहिं स्यों कूंजी ॥
एक घरी जो अज्ञा पावौं । राजहिं सौंपि मंदिर महँ आवौं ॥
तब रखवार गए सुलतानी । देखि अँकार भए जस पानी ॥
जाइ साह आगे सिर नावा । ए जग सूर चांद चलि आवा ॥
जावत हैं सब नखत तराईं । सोरह से चंडोल सो आईं ॥

चित उर जेति राज के पूंजी। लेइ सो आइ पद्मावति कुंजी॥
विनती करै जोरि कर खरी। लेइ सौंपो राजा एक घरी॥

इहाँ उहाँ कर स्वामी, दुऔ जगत मोहिं आस॥
पहले दरस देखावहु, तौ पठवहु कविलास॥

आज्ञा भई, जाइ एक घरी। छूँछि जो घरी फेरि विधि भरी॥
चलि विवान राजा पहँ आवा। संग चंडोल जगत सब छावा॥
पद्मावति के भेस लोहारू निकसि काटि बंदि कीन्ह जोहारू॥
उठा कोपि जस छूटा राजा, चढ़ा तुरंग, सिंघ अस गाजा॥
गोरा बादल खांडे कांढे। निकसि कुँवर चढ़ि२ भए ठाढ़े॥
तीख तुरंग गगन सिर लागा। केहूँ जुगति करि टेकी बागा॥
जो निज ऊपर खड्ग सँभारा। मरन हार सो सहसन मारा॥

भई पुकार साह सौं, ससि औ नखत सो नाहिं।
सूर के गहन गरासा, गहन गरासे जाहिं॥

लेइ राजा चितउर कहँ चले। छूटेउ सिंघ मिरिग खल भले॥
चढ़ा साहि, चढ़ि लागि गोहारी। कटक असूझ परी जग कारी॥
फिरि गोरा बादल सौं कहा। गहन छूटि पुनि चाहै गहा॥
चहुँ दिसि आवै लोपत भानू। अब इहै गोइ, इहै मैदानू॥
तुइ अब राजहि लेइ चलु गोरा। हौं अब उलटि जुरौं भा जोरा॥
वह चौगान तुरुक कस खेला। होइ खेलार रन जुरौं अकेला॥
तो पावौं बादल अस नाऊँ, जो मैदान गोइ लेइ जाऊँ॥

आजु खड्ग चौगान गहि, करौं सीस-रिपु गोइ।
खेलौं सौंह साह सौं, हाल जगत महँ होइ॥

तब अगमन होइ गोरा मिला तुइ राजहिं लेइ चलु बादला ॥
ि।ता मेरे जो सँकरे आया मिचुन देइ पूत के माथा ॥
मैं अब आउ भरी औ मूँजी। का पछिताव आइ जो पूँजी ॥
बहुतन्ह मारि मरौं जो जूझो। तुम जिनि रोवहु तौ मन बूझो ॥
कुँवर सहस संग गोरा लीन्हें। और बीर बादल संग कीन्हें ॥
गोरहिं समदि मेघ अस गाजा। चला लिए आगे करि राजा ॥
गोरा उलटि खेत भा ठाढ़ा। पुरुष देखि चाउ मन बाढ़ा ॥

आव कटक सुलतानी, गगन छपा मसि माँझ।
परति आव जगकारी, होति आव दिन साँझ ॥

होइ मैदान परी अब गोइ। खेल हार दहुँ काकर होई ॥
फिरि आगे गोरा तब हाँका। खेलौं, करौं आजु रन साका ॥
हौं कहिए धौलागिरि गोरा। .रौं न टारे, अंग न मोरा ॥
सोहिल जैस गगन उपराहीं। मेघ घटा मोहिं देख बिलाहीं ॥
सहसौ सीस सेस सम लेखौं। सहसौ नैन इन्द्र सम देखौं ॥
चारिउ भुजा चतुरभुज आजू। कंस न रहा, और को साजू ? ॥
हौं होइ भीम आजु रन गाजा। पाछि घालि डुंगवै राजा ॥
होइ हनुमँत जमकातर ढाहौं। आजु स्वामि साँकरे निबाहौं ॥

होइ नलनील आजुहौं, देउँ समुद महँ मेंड।
कटक साहकर टेकौं, होइ सुमेरु रन बेंड ॥

ओ नई घटा चहूँ दिसि आई। छूटहिं बान मेघ झरि लाई ॥
डोले नाहिं देव जस आदि। पहुँचे आइ तुरुक सब बादी ॥

हायन गेह खड्ग हरद्दानो । चमकहिं सेल बीज के बानी ॥
सोझ बान जस आवहिं गाजा । बासुकि डेरे सीष जनु बाजा ॥
नेजा चढे डेरे मन इन्दू । आइन बाज जानिके हिन्दू ॥
गोरे साथ लीन्ह सब साथी । जस मैं मंत सूंड बिनु हाथी ॥
सब मिलि पहिलि उठौनी कीन्ही । आवन जाइ हाँकले दीन्ही ॥

रुंड-मुंड अब टूटहिं, स्यो बखतर औ कूँड ।
तुरय होहिं बेनु कांधे, हस्ति होहिं बिनु सूंड ॥

ओनवत आइ सेन सुलतानी । जानहु परलय आय तुलानी ॥
लोहे सेन सूझ सब कारी । तिल एक कहूं न सूझ उघारी ॥
खड्ग फौलाद तुरुक सब काढे । धरे बीजु अस चमकहिं ठाढे ॥
पीलवान गज पेले बांके । जानहु काल करहिं दुइ फांके ॥
जनु जमकात करहिं सब नवां । जिउ लेइ चढ़हिं सरग अपसवां ॥
सेल सरप जनु चाहहिं डसा । लेहिं काढि जिउ मुख बिष बसा ॥
तिन्ह सामुहँ गोरा रन कोपा । अंगद सरिस पांव भुइ रोपा ॥

सुपुरुष भागि न जानैं, मुंह जौ फिरि फिरि लेइ ।
सूर गहे दोऊ कर, स्वामी काज जिउ देइ ॥

भइ पग मेल, मेल पग बागा । औ गज पेल, अकेल सो गारा ॥
सहस कुंवर सहसौ सत बांधा । भार पहार जूझ कर कांधा ॥
लगे मरे गोरा के आगे । बाग न मोर-घाव मुख लागे ॥
जैसे पतंग आगि धंसि लेई । एक मुवै दूसर जिउ देई ॥
टूटहिं सीस, अधर-धर मारे । लोटहिं कंधहिं कंध निरारे ॥

कोई परहिं रुहिर होइ राते । कोई घायल घूमहिं माते ॥
कोई खुर खेह गए भरि भोगी । भसम चढ़ाइ परे होइ जोगी ॥

घरी एक भारत भा, भा असवारन्ह मेल ।
जूझि-कुँवर सब निबरे, गोरा रहा अकेल ।

गोरै देखि साथि सब जूझा । आपन काल नियर भा बूझा ॥
कोपि सिंघ सामुंह रन मेला । लाखन्ह सो नाहिं मरै अकेला ॥
लेइ हाँकि हस्तिन्ह कै ठठा । जस पवन बिदारै घटा ॥
जेहि सिर देइ कोपि करवारू । स्यो घोड़े टूटै असवारू ॥
लोटहिं सीस कबन्ध निनारे । माठ मजीठ जनहुं रन ढारे ॥
खेलि फाग सेंदुर छिरकावा, चाँचरि खेलि आगि जनु लावा ॥
हस्ती घोड़ा धाइ जो धूका । ताहि कीन्ह सो रुहिर भभूका ॥

भइ अग्या सुलतानी, बेगि करहु एहि हाथ ।
रतन जात है आगे, लिए पदारथ साथ ॥

सबै कटक मिलि गोरहि छेंका । गुंजत सिंघ जाइ नहिं टेंका ॥
जेहि दिसि उठै सोइ जनु खावा । पलटि सिंघ तेहि ठाँव न आवा ॥
तुरक बोलावहिं बोलै बाहाँ । गोरै मीचु धरी जिय माहाँ ॥
मुए पुनि जूझ जाब जग देऊ । जियत न रहा जगत महँ कोऊ ॥
जिनि जानहुं गोरा सो अकेला । सिंघ की मोंछ हाथ को मेला ॥
सिंघ जियत नहीं आपु धरावा । मुए पाछ कोई घिसियावा ॥
करै सिंघ मुख -सौंहहि दीठी । जौ लगी जिये देइ नहीं पीठी ॥

रतनसेन जो बांधा, मसि गोरा के गात ।
जो लगि रुहिर न धोवौं. तौ लगि होइ न रात ॥

कहे सि अंत अब भा भुइ परना । अंत त्यज से खेह सिर भरना॥
कहि कै गरजि सिंघ अस धावा । सरजा सारदूल पँह आवा ॥
सरजै लीन्ह सांग पर घाऊ । परा खड़ग जनु परा निहाऊ ॥
बज्जक सांग, बज्र के डांडा । उठी आगि तस बाजा खांडा ॥
जानहु बज्र बज्र सों बाजा । सब ही कहा परी अब गाजा ॥
दूसर खड़ग कंध पर दीन्हा । सरजै ओहि ओड़न पर लीन्हा ॥
तीसर खड़ग कूंड पर लावा । कांध-गुरुज टूट, पावन पावा ॥

तस मारा हठि गोरै, उठि बज्र कै आगि ।
कोई नियरे नहिं आवै, सिंघ सदूरहि लागि ॥

तब सरजा कोपा बरिबंडा । जनहुं सदूर केर भुज दंडा ॥
कोपि गरजि मारेसि तस बाजा । जानहुं परी टूटि सिर गाजा ॥
ठांठर टूट, फूट सिर तासू । स्यौं सुमेरु जनु टूट अकासू ॥
धमकि उठा सब सरग पतारू । फिरि गई दीठि, फिरा संसारू ॥
भई परलय अस सब ही जाना । काढ़ा खड़ग सरग नियराना ॥
तस मारेसि स्यो घोड़े काटा । धरती फाटि, सेष फन फाटा ॥
जौं अति सिंह बरी होइ आई । सारदूल सौं कौनि बड़ाई ॥

गोरा परा खेत मँह, सुर पहुंचावा पान ।
बादल लेइगा राजा, लेइ चितउर नियरान ॥

सूरदास

जीवन परिचय — सूरदास जी का जन्म कब हुआ, कहाँ हुआ, ये किस जाति के थे और इनके माता पिता कौन थे, आदि बातों का परिचय हमें बहुत कम मिलता है। कारण यह है कि महात्मा लोग स्वयं अपने संबंध में कुछ लिखना उचित नहीं समझते। समकालीन कवियों या लेखकों के साक्ष्य के आधार पर ही विद्वान् अनुमान लगाने का प्रयत्न करते हैं। इससे केवल इतना ही ज्ञात होता है कि ये पहले गऊघाट पर रहते थे। वल्लभाचार्य जी के शिष्य होने पर वृन्दावन आकर रहने लगे।

'साहित्य लहरी' में सूरदास ने इसका रचना काल संवत् १६०७ दिया है। उस समय सूरदास जी ६७ वर्ष के बताये जाते हैं। इस प्रकार इनका जन्म संवत् १५४० मानना होगा। यदि सूरदास की आयु ८०-८५ वर्ष मानी जाय तो मृत्यु १६२० के आसपास हुई होगी। इसी ग्रन्थ के अन्त में सूर ने अपनी वंश परम्परा दी है, जिसके अनुसार ये चंद बरदाई के वंशज ब्रह्मभट्ट सिद्ध होते हैं। पर ऐसा प्रतीत होता है कि 'साहित्य-लहरी' में यह पद पीछे किसी भाट ने जोड़ दिया है।

सूर के जन्मान्ध होने या बाद को अन्धा होने के सम्बन्ध में भी निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। यह भी नहीं कहा जा सकता कि अन्धे होने के कारण ही लोक परम्परा के अनुसार इन्हें 'सूरदास' कहने लगे या यही इनका असली नाम था। इनके अन्धे होने के सम्बन्ध में कई किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। कुछ विद्वान् इन्हें जन्मान्ध मानते हैं, पर किंवदन्तियों के आधार पर इनका बाद में अन्धा होना सिद्ध होता है। इनकी रचना-कुशलता, सूक्ष्म मनोवृत्तियों के विश्लेषण की क्षमता तथा

वर्णनों की सूक्ष्मता पर विचार करने पर भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सूरदास अवश्य ही सांसारिक अनुभव पर्याप्त रूप में प्राप्त कर लेने के पश्चात अन्धे हुए होंगे। किसी बीमारी के कारण इनकी आँखें गईं या अन्य किसी कारण से ये अन्धे होगये, इसकी विवेचना में पड़ना व्यर्थ है; क्योंकि भिन्न भिन्न जनश्रुतियाँ इनके अन्धे होने के भिन्न भिन्न कारण बतलाती हैं।

सूरदास जी वल्लभाचार्यजी के शिष्य थे। आचार्यजी ने इन्हें अपनी सेवा में प्रधान स्थान दिया था। वल्लभाचार्यजी के पुत्र विट्ठलनाथ जी ने पुष्टि मार्गी कवियों में से चुने हुए आठ प्रमुख कवियों में इनको प्रथम स्थान दिया था। ये 'अष्ट छाप' के 'सुमेरु' कहलाते थे। सूर के अतिरिक्त अष्ट छाप में इन कवियों की गणना है—नन्ददास, कुम्भनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी और चतुर्भुजदास।

ग्रन्थ—सूरदास जी का रचना काल संवत् १५५६ के लगभग माना जाता है। इनका सबसे पहला ग्रन्थ 'नल दमयन्ती' काव्य था, जो अब अप्राप्य है। वल्लभाचार्य जी के शिष्य होने के उपरान्त इन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सूर सागर' की रचना की। यह ग्रन्थ श्रीमद्भागवत के आधार पर लिखा गया है। कहते हैं कि इसमें सवा लाख पद हैं, किन्तु अभी तक खोज में केवल पाँच-छः हजार पद ही प्राप्त हुए हैं। सवा लाख पद लिख चुकने पर 'सूर सारावली' की रचना हुई और इससे कुछ पहले शायद 'साहित्य लहरी' संकलित की गई हो। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त व्याहलो, हरिवंश टीका, पद संग्रह, दशम स्कंध टीका और नागलीला भी इनकी लिखी हुई बताई जाती है, परन्तु व्याहलो के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें किसी दूसरे सूरदास की लिखी हुई जान पड़ती हैं।

भक्ति-भावना—सूर ने विष्णु के अवतार कृष्ण की उपासना उत्तम बताया। ये पुष्टिमार्गी सम्प्रदाय के थे। इस सम्प्रदाय में सर्वस्व समर्पण

और भगवान के अनुग्रह पर बड़ा बल दिया जाता है। जब तक भक्त अपने भगवान को सर्वस्व समर्पण नहीं कर देता, और भगवान उस पर अनुग्रह नहीं करते तब तक वह उनका स निध्य-लाभ नहीं कर सकता। सूर की भक्ति सख्य भाव की है इसलिए इनका मन बालकृष्ण तथा गोपीकृष्ण की लीलाओं में जितना रमा, उतना कृष्ण के लोकरंजक रूप कार्यों में नहीं।

भाव पक्ष —'सूर सागर' ही सूरदास जी का प्रमुख काव्य है, जिसके आधार पर सूरदासजी के मनोवैज्ञानिक अध्ययन का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। 'सूर सागर' कई हजार पदों का विशाल संग्रह है। उसमें अनेक रत्न हैं, जो सूर की सहृदयता और भावुकता का परिचय देते हैं, जो सूर की सहृदयता और भावुकता का परिचय देते हैं, परन्तु प्रधानतः कृष्ण की बाल-लीला और भ्रमर-गीत ऐसे प्रसंग हैं, जिनमें सूर की प्रतिभा ने भली प्रकार संचरण किया है। सूर सागर श्रीमद्भागवत का अनुवाद है, पर उसमें कृष्ण का उन्हीं लीलाओं के पद विशेष रूप से हैं, जिनमें सूर का मन विशेष रूप से रमा है। भागवत के दशम स्कंध की कथा सूर ने बड़े विस्तार से कही है।

सूर का बाल वर्णन हिन्दी-साहित्य में अपूर्व है। यहाँ तक कहा जाता है कि उस कोटि का बाल-वर्णन संसार के किसी भी साहित्य में नहीं है। [illegible] बालक की प्रकृति का जितना परिचय हो सकता है उतना [illegible] स्वाभाविक वर्णन कृष्ण की लीला में मिलता है। यशोदा का कृष्ण को पालने में झुलाना कृष्ण का आँखें मूँद लेना परन्तु यशोदा के चुप होते ही बालक कृष्ण का फिर रोने लग जाना; कृष्ण का हाथ से पैर का अँगूठा पकड़ कर चूसना, माता यशोदा का अभिलाष करना—"कब मेरा लाल घुटरुवन रेंगै, कब धरनी पग द्वै क धरै," माता यशोदा के अनुकरण पर दही मथने की हठ करना, आदि अनेक सुन्दर और हृदय स्पर्शी वर्णनों में यह प्रसंग

सीमा नहीं रहता। उधर कृष्ण भी गोपियों का स्मरण कर आत्म-विभोर हो जाते हैं। उनके सखा उद्धव कृष्ण को योग का उपदेश दे कर समझाते हैं। उद्धव प्रेम की महिमा नहीं जानते। कृष्ण उन्हें अपनी ज्ञान गठरी ब्रज में ले जाने की राय देते हैं। उद्धव अपने ज्ञान के दर्प में गोपियों को प्रेम से विरत करने के लिए ब्रज में जाते हैं, परन्तु गोपियों की विरह कातर दशा, दीनता, त्याग, विह्वलता, प्रेमातिरेक को देख कर अपना सारा ज्ञान भूल जाते हैं और प्रेम के रंग में रंग कर मधुप लौटते हैं। 'सूर' ने इस भ्रमर गीत में उद्धव और गोपियों के संवाद द्वारा विप्रलम्भ शृङ्गार की अनेक मनोदशाओं का चित्रण अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है। उद्धव के ज्ञानोपदेश के उत्तर में गोपियों के भोले और भावमय उत्तर उद्धव को निरुत्तर कर देते हैं:—

'ऊधो, मन नाहीं दस-बीस।
एक हुतो सो गयो स्याम संग को आराधै ईस?'

कभी गोपियाँ खीझकर उद्धव को फटकार बताती हैं:—

"रहि रे, मधुकर! मधु मतवारे।
कहा करौं निर्गुन लैके हौं, जीवहु कान्ह हमारे।"

तो कभी उनका उपहास करती हैं:—

'विलग जनि मानहु, ऊधो प्यारे।
यह मथुरा काजर की कोठरि जे आवहिं ते कारे।"

कभी कृष्ण प्रेम में विह्वल हो कर पुकार उठती हैं—

'अखियाँ हरि दर्शन की भूखीं।"

तो कभी कृष्ण की निर्ममता पर रुष्ट होकर अपने को ही कोसने लगती हैं:—

'अब मन मुदित होति है साजन।
सबै सखनि भई सुनि मुरली हमी पदट का छाजन।"

उक्त दोनों वर्णनों के कारण ही सूर हिन्दी-साहित्याकाश के सूर्य कहलाते हैं। सूर के काव्य में रसों और भावों की विविधता भले ही न मिले पर वात्सल्य और शृङ्गार की सम्पूर्ण अन्तर्वृत्तियों का समावेश उसमें इतनी प्रचुरता से है कि 'तुलसी' जैसे महाकवि भी इन प्रसंगों के वर्णनों में उनके समकक्ष नहीं ठहरते।

कलापक्ष—सूर में जहाँ शृङ्गार और वात्सल्य की मनोदशाओं की पूर्ण शक्ति थी वहाँ काव्य-प्रतिभा भी कम न थी। दृश्यों तथा विषयों का चित्र उपस्थित करने के लिए इन्होंने उत्प्रेक्षा, उपमा और रूपक से विशेष काम लिया है। अन्य साधारण अलंकार तो पद-पद पर बिखरे मिलते हैं।

सूर ने अपने काव्यों की रचना ब्रजभाषा में की। जिस भाषा में उनके आराध्य बालकृष्ण ने माखन रोटी माँगी थी, उस भाषा को कृष्ण की लीला का गान करते समय वे कैसे भूल सकते थे? सूर की ब्रजभाषा साहित्यिक होते हुए भी प्रसाद गुण युक्त है। उसमें तत्कालीन ब्रजभाषा के मुहावरों का प्रयोग मिलता है। उसमें प्रसाद के अतिरिक्त माधुर्य गुण की प्रचुरता भी है।

सूर की रचना में भावपक्ष की प्रबलता तथा सौंदर्य के परिपूर्ण होने के कारण ही कदाचित् उनके लिए यह दोहा हिन्दी साहित्य में प्रसिद्ध है:—

'सूर सूर तुलसी ससी, उडुगन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करत प्रकास॥'

"सूरदास"

कृष्ण की बाल—लीला

(१)

जसोदा हरि पालने झुलावे।

हलरावे दुलराइ मल्हावे जोइ सोई कछु गावे ॥
मेरे लाल को आउ निंदरिया काहे न आनि सुनावे ॥
तू काहे न बेगिही आवे तोको कान्ह बुलावे ॥
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं कबहुँ अधर फरकावे ॥
सोवत जानि मौन है रहि-रहि करि-करि सैन बतावे ॥
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरे गावे ॥
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नंद भामिनी पावे ॥

(२)

कर गहि पग अँगूठा मुख मेलत।

प्रभु पौढ़े पालने अकेले, हरषि हरषि अपने रंग खेलत ॥
सिव सोचत बिधि बुद्धि बिचारत बट बाढ्यो सागर जल झेलत ॥
बिडरि चले घन प्रलय जानि के दिगपति दिगदंतिय न सकेलत ॥
मुनि मन भीत भए, भव कंपित, सेष सकुचि सहसौ फन पेलत ॥
उन ब्रज बासिन बात न जानी, समुझे 'सूर' सकट पग पेलत ॥

(३)

जसोदा मदन गोपाल सुनावै
देखि सपन गत त्रिभुवन कंप्यो ईस बिरंचि भ्रमावै ॥
असित अ सन सित आलस लोचन उभै पलक पर आवै ॥
जनु रवि गत संकुचित कमल जुग निसि अलि उड़ न पावै ॥
चौंकि चौंकि सिसु दसा प्रकट करें छवि मन में नहिं आवै ॥
जानो निसिपति धरि कर अमृत श्रिति भंडार भावै ॥
स्वास उदर उच्छरत यों मानों, दुग्ध सिंधु छवि पावै ॥
नाभि सरोज प्रगट पद्मासन उतरि जाल पछितावै ॥
कर सिरतर करि स्याम मनोहर अलक अधिक सोभावै
'सूरदास' मानो पन्नग पति प्रभु ऊपर फन छावै ।

(४)

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुन चलत रेनु तनु मंडित मुख दधि लेप किये ॥
चारु कपोल लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिये ।
लट लटकनि मनो मत्त मधुप गन मादक मदहिं पिये ॥
कठुला, कंठ, बज्र, केहरि नख राजत रुचिर हिये ।
धन्य सूर एकौ पल या सुख, का सत कल्प जिये ॥

(५)

कहाँ लौं बरनौं सुन्दर ताई ।
खेलत कुँवर कनक आँगन में नैन निरखि छवि छाई ॥
कुलही लसत सिर स्याम सुभग अति बहुविधि सुरँग बनाई ॥
मानों नव घन ऊपर राजत मघवा धनुष्य चढ़ाई ॥

अति सुदेस मृदु चिकुर हरत मन मोहन मुख बगराई ॥
मानो प्रगट कंज पर मंजुल अलि अवली फिरि आई ॥
नील सेत पर पीत लाल मनि लटकन भाल लुनाई ॥
सनि गुरु-असुर, देव-गुरु मिलि मनो भौम सहित समुदाई ॥
दूध दंत दुति कहि न जाति अति अद्भुत एक उपमाई ॥
किलकत हँसत दुरत प्रगटत मनो घन में बिज्जु छपाई ॥
खंडित बचन देत पूरन सुख अलप अलप जलपाई ॥
घुटुरन चलत रेनु तनु मंडित 'सूरदास' बलि जाई ॥

(६)

मथत दधि, मथनी टेकि रह्यो ।

आरि करत मटुकी गहि मोहन बासुकी संभु डर्‌यो ।
मंदर डरत सिंधु पुनि काँपत फिरि जनि मथन करै ॥
प्रलय होय जनि गहो मथानी विधि मरजाद टरै ।
सुर अरि सुर ठाढ़े सब चितवैं नैनन नीर ढरै ॥
'सूरदास' प्रभु मुग्ध जसोदा मुख दधि बिंदु परै ।

(७)

हरि को बाल रूप अनूप ।

निरखि रहिं ब्रज नारि इकटक अँग अंग प्रति रूप ॥
बिथुरि अलकैं रहि बदन पर बिनहिं पवन सुभाइ ।
देखि खंजन चंद के बस करत मधुप सहाइ ॥

(२)

तेरो बुरो न कोऊ मानै।
रस की बात मधुप नीरस सुनु, रसिक होत सो जानै।
दादुर बसै निकट कमलनि के जनम न रस पहिचानै॥
अलि अनुराग उड़न मन बाँध्यो कहे सुनत नहिं कानै।
सरिता चलि मिलन सागर को कूल मूल-द्रुम भानै॥
कायर बकै, लोहते भाजे, लरै सो 'सूर' बखानै।

(३)

निर्गुन कौन देस को बासी।
मधुकर! हँसि समुझाय सौंह दै बूझति साँच न हाँसी॥
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी।
कैसो बरन भेस है कैसो, केहि रस में अभिलाषी॥
पावैगो पुनि कियो आपनो जो रे! कहैगो गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यो ठग्यो सो 'सूर' सबै मति नासी॥

(४)

बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजैं।
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजैं।
वृथा बहति जमुना, खग बोलत, वृथा कमल फूलैं, अलि गुंजैं।
पवन, पानि, घनसार, सजीवनि, दधिसुत किरन भानु भई भुंजैं॥
ए ऊधो कहियो माधव सों बिरह करद करि मारत लुंजैं।
'सूरदास' प्रभु को मग जोवत अँखियाँ भई बरन ज्यों गुंजैं॥

अति सुदेस मृदु चिकुर हरत मन मोहन मुख बगराई ॥
मानो प्रगट कंज पर मंजुल अलि अवली फिरि आई ॥
नील सेत पर पीत लाल मनि लटकन भाल लुनाई ॥
सनि गुरु-असुर, देव गुरु मिलि मनौ भौम सहित समुदाई ॥
दूध दंत दुति कहि न जाति अति अद्भुत एक उपमाई ॥
किलकत हँसत दुरत प्रगटत मनौ घन में बिज्जु छपाई ॥
खंडित बचन देत पूरन सुख अलप अलप जलपाई ।
घुटुरन चलत रेनु तनु मंडित 'सूरदास' बलि जाई ।

(६)

मथत दधि, मथनी टेकि रह्यो ।

आरि करत मटुकी गहि मोहन बासुकी संभु डर्यो ।
मंदर डरत सिंधु पुनि काँपत फिरि जनि मथन करै ॥
प्रलय होय जनि गहो मथानी विधि मरजाद टरै ।
सुर अरि सुर ठाढ़े मव चितवैं नैनन नीर ढरै ॥
'सूरदास' प्रभु मुग्ध जसोदा मुख दधि बिनु गरै ।

(७)

हरि को बाल रूप अनूप
निरखि रहि ब्रज नारि इकटक अंग अंग प्रति रूप ॥
बिथुरि अलकैं रहि बदन पर बिनहिं बपन सुभाइ ।
देखि खंजन चंद के बस करत मधुप सहाइ

(२)

तेरो बुरो न कोऊ मानै।
रस की बात मधुप नीरस सुनु, रसिक हेत सो जानै।
दादुर बसे निकट कमलनि के जनम न रस पहिचानै॥
अति अनुराग उड़न मन बाँध्यो, कह्यो सुनत नहीं कानै।
सरिता चले मिलन सागर को कूल मूल-द्रुम भानै॥
कायर बकै, लोहते भाजे, लरै सो 'सूर' बखानै।

(३)

निर्गुन कौन देस को बासी।
मधुकर! हँसि समुझाय सौंह दै बूझति साँच न हाँसी॥
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी।
कैसो बरन भेष है कैसो, केहि रस मैं अभिलासी॥
पावगो पुनि कयो आपनो जो रे! करैगो गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यो ठग्यो सो 'सूर' सबै मति नासी॥

(४)

बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजै।
तब ये लगति अति सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजै।
वृथा बहति जमुना, खग बोलत, वृथा कमल फूलै, अलि गुंजै।
पवन, पानि, घनसार, सजीवनि, दधि सुत किरन भानु भई भुंजै॥
ये ऊधव कहियो माधव सों बिरह करद कर मारत लुंजै।
'सूरदास' प्रभु को मग जोवत अँखियाँ भई बरन ज्यों गुंजै॥

(५)

दूर करहु बीना कर धरिबो।
मोहे मृग नाहीं रथ हाँक्यो नाहिन होत चंद को ढरिबो॥
बीति जाहि पै सोई जानै कठिन है प्रेम पास को परिबो।
जब तें बिछुरे कमलनयन सखि रहत न नयन नीर को ढरिबो॥
सीतल चंद अगिनि सम लागत कहिये धीर कवन बिधि धरिबो।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे दरस बिनु सब झूठो जतननि को करिबो॥

(६)

ऊधो अब यह समझ भई।
नंदनंदन के अंग अंग प्रति उपमा न्याय दई॥
कुन्तल कुटिल भँवर भरि भाँवरि मालति भुरै लई।
तजत न गहरु कियो कपटी जब जानी निरस गई॥
आनन इंदु बरन, सम्पुट तजि करखे ते न नई।
निरमोही नहिं नेह कुमुदनी अन्तहिं हेम हई॥
तन घनश्याम सेई निसिबासर रटि रसना छिजई।
'सूर' बिबेक-हीन चातक मुख बूँदौ तौन सई॥

(७)

तब तें इन सबहिन सचु पायो।
जब तें हरि सन्देस तिहारो, सुनत तवारो आयो॥
फूले ब्याल-दुरे ते प्रगटे पवन पेट भरि खायो।
फूले मिरगा चौंकि चरनन ते हुते जो बन बिसरायो॥

विनय के पद

(१)

चरन कमल वन्दौ हरि राई।

जाके कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे कूँ सब कुछ दरसाई ॥
बहिरो सुनै, मूक पुनि बोलै, रंक चले सिर छत्र धराई।
'सूरदास' स्वामी करुनामय बार-बार वन्दौं तेहि पाई ॥

(२)

मो सम कौन कुटिल खल कामी ?
जिन तनु दियो ताहि बिसरायो ऐसो नौन हरामी ॥
भरि-भरि उदर विषय को धावौं जैसे सूकर ग्रामी।
हरिजन छाँड़ि हरी विमुखन की निसि दिन करत गुलामी॥
पापी कौन बड़ो है मोतें सब पतितन में नामी।
'सूर' पतित को ठौर कहाँ है सुनिये श्रीपति स्वामी।

(३)

अब के माधव मोहिं उधारि।
मगन हौं भव अंबुनिधि में कृपासिंधु मुरारी ॥
नीर अति गंभीर माया, लोभ, लहरि तरंग।
लिए जात अगाध जल में गहे ग्राह अनंग ॥
मीन इन्द्रिय अति हि काटत मोट अघ सिर भार।
पग न इत उत धरन पावत उरझि मोह-सेवार ॥

काम क्रोध समेत तृष्णा, पवन अति झकझोर।
नहिं चितवन देत तिय सुत नाम नौका ओर॥
थक्यो बीच बेहाल बिह्वल सुनहु करुना-मूल।
स्याम भुज गहि काढ़ि डारहु 'सूर' ब्रज के कूल॥

(४)

कीजै प्रभु अपने बिरद की लाज।

महापतित कबहूँ नहिं आयो नेकु तुम्हारे काज॥
माया सबल धाम-धन-बनिता बाँधयो हौ इहि साज।
देखत सुनत सबै जानत हौं तऊ न आयो बाज॥
कहियत पतित बहुत तुम तारे स्रवननि सुनी आवाज।
दई न जात खार उतराई चाहत चढ़न जहाज॥
लीजै पार उतारि 'सूर' को महाराज ब्रजराज।
नई न करत कहत प्रभु तुम हो सदा गरीब नेवाज॥

(५)

जनम सिरानो अटके अटके।

सुत संपति गृह राज मान को फिरो अनत ही भटके॥
कठिन जवनिका रची मोह की तोरी जाय न चटके।
ना हरि भजन न सुमिरिन विषय की रहो बीच ही लटके॥
सब जंजाल सु इन्द्र-जाल सम ज्यों बाजीगर नटके।
'सूरदास' सोभान सोभित व पिय बिहून धन मटके॥

(६)

प्रभु हौं सब पतितन को राजा।
पर निन्दा मुख पूरि रह्यो जग यह निसान नित बाजा॥
तृसना देसरु सुभट मनोरथ इन्द्रिय खड़्ग हमारे।
मंत्री काम कुमत दैवे को क्रोध रहत प्रतिहारे॥
गज अहँकार चढ्यो दिग विजयी लोभ छत्र धारे सीस
फ़ौज असत संगति की मेरी ऐसो हौं मैं ईस।
मोह मदे बन्दी गुन गावत, मागध दोष अपार।
'सूर' पाप की गढ़ दृढ़ कीन्हों मुहकम लाइ केवार।

(७)

माधव जू ! यह मेरी इक गाई।
अब आज तें आप आगे, दई लै आइये चराइ॥
है अति हरहाई हटकत हूं बहुत अमारग जाति।
फिरत वेद-वन ऊख उखारत सब दिन अरु सब राति॥
हित कै मिलै लेहु गोकुल पति अपने गोधन माँह।
सुख सोऊँ सुनि बचन तुम्हारे देहु कृपा करि बाँह॥
निधरक रहौं 'सूर' के स्वामी जन्म न पाऊँ फेरि।
मैं ममता रुचि सों जदुराई पहिले लेहु निबेरि॥

(८)

जौ लौं सत्य स्वरूप न सूझत।
तौ लौं मनु मनि कंठ बिसारे फिरतु सकल बन बूझत॥

अपनो ही मुख मलिन मंद मति देखत दरपन माँह।
ता कालिमा मेटिबे कारन पचत पखारत छाँह॥
तेल तूल पावक पुट भरि धरि बनै न दिया प्रकासत।
कहत बनाय दीप की बातैं कैसे हो तम नासत॥
'सूरदास' जब यह मति आई वे दिन गये अलेखे।
कह जाने दिनकर की महिमा अंध नयन बिनु देखे॥

(९)

अब हौं नाच्यो बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल॥
महा मोह के नूपुर बाजत, निंदा सबद रसाल।
भरम भयो मन भयो पखावज, चलत कुसंगति चाल॥
तृसना नाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल।
माया को कटि फेंटा बाँध्यो, लोभ तिलक दियो भाल॥
कोटिक कला काछि दिखराई जल थल सुधि नहिं काल।
'सूरदास' की सबै अविद्या दूर करो नन्द लाल॥

(१०)

अविगति गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगे हि मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावै॥
परम स्वाद सब ही जु निरन्तर अमित तोष उपजावै।
मन बानी को अगम अगोचर सो जाने जो पावै॥
रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु निरालम्ब मन चकृत धावै
सब बिधि अगम बिचारहिं ताते 'सूर' सगुन लीला पद गावै॥

तुलसीदास

जीवन परिचय—गोस्वामी जी का जन्म राजापुर जिला बाँदा में संवत् १५८९ में हुआ था। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का हुलसी था। इनका वास्तविक नाम 'रामबोला' था। इनका जन्म अभुक्त मूल नक्षत्र में हुआ था। इनके माता-पिता इनकी बाल्यावस्था में ही स्वर्गवासी हो गये थे और दाने-दाने को बिललाते फिरते थे। इनका विवाह दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था। जनश्रुति है कि इन्हें स्त्री की भर्त्सना से ईश्वर की ओर अनुरक्ति हुई। अपनी स्त्री के नैहर चले जाने पर ये भी प्रेम-वश उसके पीछे चले गये। इस पर इनकी स्त्री ने कहा—

> "अस्थि-चर्म-मय देह यह, तासो इतनी प्रीति;
> होती जो श्री राम पर, होति न तौ भव-भीति।"

तुलसीदासजी को यह बात लग गई और वे घर छोड़ कर निकल पड़े। ये महात्मा नरहरिदास के पास गये और उनके शिष्य हो गये। इन्होंने अनेक तीर्थों का भ्रमण किया, पर इनका मुख्य निवासस्थान काशी था। गोस्वामी जी को अन्तिम दिनों में वात रोग हो गया था। ये बाहु पीड़ा से पीड़ित रहे, परन्तु जल्दी हनुमानजी की कृपा से वह पीड़ा जाती रही।

गोस्वामी जी की मृत्यु के सम्बन्ध में यह दोहा प्रसिद्ध है:—

> 'संवत् सोलह सै असी, असी गंग के तीर।
> सावन सुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो सरीर॥

इसके अनुसार गोस्वामी जी का देहावसान सावन शुक्ला सप्तमी को होना प्रकट होता है, किन्तु गणना से यह अशुद्ध है। गोस्वामीजी के परम मित्र टोडर के वंशज गोस्वामी जी की मृत्यु तिथि पर आज भी ब्राह्मणों को सीधा देते हैं। वह तिथि सावन शुक्ला तीज है। अन्य शास्त्रों के आधार पर भी गोस्वामी जी की मृत्यु-तिथि 'सावन-शुक्ला तीज शनि' ही सिद्ध होती है।

गोस्वामी जी के कुल के विषय में विद्वानों में मतभेद है। किसी ने इन्हें कान्य कुब्ज ब्राह्मण और किसी ने सरयूपारीण माना है। सरयूपारीण होना अधिक संगत जान पड़ता है। गोस्वामीजी के स्नेहियों में नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना, महाराज मानसिंह, नाभाजी और मधुसूदन सरस्वती आदि कहे जाते हैं।

ग्रन्थ—गोस्वामी जी के रचे बारह ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, जिनमें ५ बड़े और ७ छोटे हैं। दोहावली, कवितावली, गीतावली, रामचरित मानस विनय-पत्रिका बड़े ग्रन्थ हैं तथा रामलला नहछू, पार्वती मंगल, जानकी मङ्गल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपिनी, कृष्ण गीतावली और रामाज्ञा प्रश्नावली छोटे।

भाव पक्ष — गोस्वामी जी का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ रामचरित मानस है। इसकी जोड़ का ग्रंथ हिंदी में तो क्या, अन्य भाषाओं में भी मिलना कठिन है। मानव-जीवन की अनेक दशाओं का उल्लेख इस काव्य में है। जिस प्रकार तुलसी के आराध्य देव 'राम' पूर्ण पुरुषोत्तम थे, उसी प्रकार यह काव्य भी सर्वांगपूर्ण है। आध्यात्मिक, दार्शनिक, राजनीतिक, भक्ति-भावना, आदर्शवादिता आदि जिस दृष्टि से इस काव्य को देखते हैं, इसे हम उसमें पूर्ण पाते हैं। 'मानस' में तुलसी की वाणी की पहुँच गगन मंडल और रसातल तक है, जब कि हिंदी के अन्य महाकवि केवल एक एक भाव का पल्ला पकड़ कर बैठ रहे हैं। एक ओर तो तुलसी की

दविता व्यक्तिगत साधना के मार्ग में शुद्ध भगवद्भक्ति का उपदेश करती है, दूसरी ओर लोक पक्ष में पारिवारिक और सामाजिक संबंधों और कर्तव्यों के निर्वाह का सौंदर्य दिखाती है।

नाथपंथी साधुओं ने जिस हृदय-विहीन हठयोग का प्रचार भोली हिंदू जनता में किया, वह गोस्वामी जी को पसंद नहीं आया। उन्होंने देखा कि इससे लोक-रक्षा विकृत और क्षीण होता जा रहा है। रागात्मिका वृत्ति से उसका कोई संबंध नहीं है। अतः उन्होंने ऐसी भक्ति-पद्धति का प्रचार किया, जिसमें जीवन के सभी पक्षों का समावेश है। न उसका धर्म या कर्म से विरोध है, न ज्ञान से। प्राचीन भारतीय भक्ति-मार्ग में अनेक बढ़ती हुई बुराइयों का गोस्वामी जी ने तीव्रता के साथ खंडन किया। शैवों और वैष्णवों के बढ़ते हुए विद्वेष को उन्होंने अपनी सामंजस्य-व्यवस्था द्वारा बहुत कुछ रोका। राम का शिव का और शिव को राम का सेवक बताकर उन्होंने दोनों दलों का समन्वय करने का प्रयत्न किया।

तुलसी की भक्ति दास्य भाव की थी। रामचरित मानस में वे सदैव सच्चे सेवक की भाँति राम के साथ रहे हैं। जिन-जिन दृश्यों तथा घटनाओं का सम्बंध राम के साथ है, उन्हीं का वर्णन तुलसी ने किया है। 'राम' के आगे बढ़ जाने, या छोड़कर चले जाने पर पीछे क्या घटित होता है, इसकी उन्हें चिंता नहीं, इसलिए उनके काव्य में उर्मिला उपेक्षिता ही बनी रही। गोस्वामी जी की इसी प्रवृत्ति ने उन्हें माता-सीता तथा अन्य स्त्री-पात्रों के शृङ्गार वर्णन से बचा लिया। वे घटनाओं के साथ बहते हुए भी राम को नहीं भूलते और जब कभी 'राम' का प्रसंग उनको वर्णनों से दूर हटता दिखाई देता है, तब वे कोई प्रसंग ला कर अपने राम को अवसर स्मरण कर लेते हैं।

गोस्वामी जी का 'मानस' 'नाना पुराण निगमागम सम्मत' है यद्यपि उसमें उनकी बुद्धि तथा कौशल का समावेश भी पर्याप्त रूप से है।

उन्होंने जो कुछ लिखा भगवान राम के सम्बन्ध में ही लिखा। नर-काव्य करने की उन्होंने शपथ सी ले रक्खी थी। उन्होंने कहा है:—
'कीन्हें प्राकृत जन गुण गाना। सिर धुनि गिरा लागि पछिताना।'

सामाजिक दृष्टि से भी रामचरित मानस अद्वितीय ग्रंथ है। परिवार के नाना संबंधों के निर्वाह के आदर्श जितने 'मानस' में मिलते हैं, उतने अन्यत्र दुर्लभ हैं।

शैली—तुलसी का हृदय-पक्ष जितना प्रबल है, उतना ही कला पक्ष भी। उन्होंने जिस प्रकार मानव-प्रकृति के नाना रूपों का नाना संबंधों के संयोग से अपूर्व विश्लेषण किया है, उसी प्रकार काव्य की प्रकृति के नाना रूपों के दर्शन भी उन्होंने कराये हैं। तुलसी का साहित्य तत्कालीन सभी प्रकार की प्रचलित भाषाओं में है। तुलसी ने किसी पद्धति को अछूता नहीं छोड़ा। जयदेव और विद्यापति की गीत पद्धति पर गोस्वामी जी ने गीतावली और विनय-पत्रिका की रचना की; चंदबरदाई की छप्पय पद्धति पर उन्होंने रामचरित मानस में वीरता पूर्ण प्रसंगों पर कई सुंदर छप्पय छंदों को रक्खा। गंग आदि भाटों की कवित्त-सवैया वाली पद्धति पर राजा राम का वैभव-वर्णन के लिए कवितावली लिखी। ईश्वरदास और जायसी की दोहा-चौपाई वाली प्रबंध-पद्धति पर तो उन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ रामचरितमानस ही लिख डाला। इसी प्रकार कबीर आदि संतों की उपदेशात्मक दोहा वाली पद्धति पर दोहावली की रचना की। गोस्वामी जी ने जिस शैली को अपनाया; उसी को उत्कृष्टता पर पहुँचा दिया। उनके आगे उन शैलियों के प्रवर्तक भी पीछे पड़ गये।

भाषा—गोस्वामी जी का अध्ययन बहुत विस्तृत था। राम-चरित मानस के प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ के श्लोक, विनय-पत्रिका की संस्कृत पदावली तथा मानस की स्तुतियाँ उनके संस्कृत-ज्ञान का पूर्ण परिचय देती हैं। वे तत्कालीन अन्य भाषाओं के भी पूर्ण पंडित थे। अवधी

और ब्रज दोनों भाषाओं पर उनका समान अधिकार था। अवधी में 'मानस' की रचना कर उन्होंने अवधी भाषा को अमर कर दिया तो विनय-पत्रिका, गीतावली, कवितावली आदि ग्रन्थों को ब्रजभाषा में लिख कर ब्रजभाषा साहित्य की श्री वृद्धि की। भाषा की दृष्टि से भी गोस्वामी जी सूर और जायसी से बहुत ऊपर उठे हुए हैं। जायसी की अवधी और सूर की ब्रज-भाषा में वह साहित्यिकता और संस्कृतमयता नहीं है जो तुलसी में है।

प्रभाव—हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक और सिन्ध से ले कर बंगाल तक राम-नाम की प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण रखने वाले गोस्वामी तुलसीदास जी ही थे। हिन्दू लोग 'मानस' को पाँचवाँ वेद मान कर उसके वचनों को प्रमाण स्वरूप मानते हैं। उत्तरी भारत में कदाचित् ही ऐसा कोई हिन्दू घर होगा, जिसमें रामायण की एक प्रति न मिलती हो और शायद ही कोई हिन्दू होगा, जिसे रामायण की एकाध चौपाई कण्ठस्थ न हो। तुलसी ने 'राम' को हिन्दू हृदय से मिला कर एकाकार कर दिया, साथ ही स्वयं तुलसी भी हिन्दुओं के हृदय में घर कर गये। हिंदी का कोई कवि ऐसा ऐसा नहीं है, जिसका प्रभाव जनता पर इतना .. रूप से पड़ा हो। 'सूर सूर' ने आत्म-कल्याणकारी, एकांगी-भक्ति का तीव्र प्रकाश फेंका तो 'तुलसी ससी' ने स्निग्ध, हृदयहारी, मंगलदायक, सुशीतल लोक-कल्याण की पावन ज्योत्स्ना प्रसारित की, जिसकी स्निग्धता में सम्पूर्ण हिन्दू समाज विनिमज्जित होगया।

तुलसीदास

राम-नाम महिमा

दोहा- गिरा अरथ जल बीचिसम, कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दौं सीता राम पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ॥

चौपाई- बन्दौं राम नाम रघुबर को हेतु कृसानु भानु हिमकर को ॥
बिधि हरि हर मय बेद प्रान सो अगुन अनूपम गुन निधान सो ॥
महा मंत्र जोइ जपत महेसू। कासी मुकुति हेतु उपदेसू ॥
महिमा जासु जान गन राऊ प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ ॥
जान आदि कबि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू ॥
सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेईं पिय संग भवानी ॥
हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को ॥
नाम प्रभाव जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को ॥

बरषा ऋतु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग, सावन भादव मास ॥

आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन बिलोचन जन जिय जोऊ ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू ॥
कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके। राम लखन सम प्रिय तुलसी के ॥
बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव सम सहज संघाती ॥
नर नारायन सरिस सुभ्राता। जग पालक बिसेषि जन त्राता ॥
भगति सुतिय कल करन बिभूषन। जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन ॥

स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। कमठ सेष सम धर बसुधा के॥
जन-मन मंजु कंज मधुकर से। जीह जसोमति हरि हलधर से॥

एकु छत्रु एकु मुकुट मनि, सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोउ॥

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परस पर प्रभु अनुगामी॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥
को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेदु समुझिहहिं साधू॥
देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥
सुमिरिअ नामु रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह बिसेखे॥
नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी॥

राम-नाम-मनि-दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरहुँ, जौ चाहसि उजियार॥

नाम जीह जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी॥
ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहिं तेऊ॥
साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ॥
जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥
चहू चतुर कहुँ नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा॥
चहुँ जुग चहुँ स्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ

सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुपेय-पियूष-हृद, तिन्हहुँ किये मन मीन॥

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरे मत बड़ नाम दुहू ते। किये जेहि जुग निज बस निज बूते॥
प्रौढि सुजन जनि जानहिं जन की। कहहुँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की॥
एक दारु गत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू॥
उभय अगम जुग सुगम नाम तें। कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें॥
व्यापक एकु ब्रह्म अविनासी। सत चेतन-घन आनँदरासी॥
अस प्रभु हृदय अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी।
नाम निरूपन नाम जतन तें सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥

निरगुन तें यहि भाँति बड़, नाम प्रभाउ अपार।
कहहुँ नामु बड़ राम तें। निज विचार अनुसार॥

राम भगत हित नर तनु धारी। सहि संकट किय साधु सुखारी॥
नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल वासा॥
राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
रिषि हित राम सुकेतु सुता की। सहित सेन-सुत कीन्हि विबाकी॥
सहित-दोष दुख दास दुरासा। दलइ नाम जिमि रवि निसि नासा॥
भंजेउ राम आपु भव चापू। भव-भय-भंजन नाम प्रतापू॥
दंडक बन प्रभु कीन्ह सोहावन। जन मन अमित नाम किय पावन॥
निसिचर निकर दले रघुनंदन। नाम सकल कलि-कलुष निकंदन॥

सबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुन गाथ॥

स्वाद तोष सम सुगति सुधा के । कमठ सेष सम धर बसुधा के ॥
जन-मन मंजु कंज मधुकर से । जीह जसोमति हरि हलधर से ॥

एकु छत्रु एकु मुकुट मनि, सब बरननि पर जोउ ।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोउ ॥

समुझत सरिस नाम अरु नामी । प्रीति परस पर प्रभु अनुगामी ॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी । अकथ अनादि सुसामुझि साधी ॥
को बड़ छोट कहत अपराधू । सुनि गुन भेदु समुझिहहिं साधू ॥
देखिअहिं रूप नाम आधीना । रूप ज्ञान नहिं नाम बिहीना ॥
सुमिरिअ नामु रूप बिनु देखे । आवत हृदय सनेह बिसेखे ॥
नाम रूप गति अकथ कहानी । समुझत सुखद न परति बखानी ॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी । उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी ॥

राम-नाम-मनि-दीप धरु, जीह देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहिरहुँ, जौ चाहसि उजियार ॥

नाम जीह जपि जागहिं जोगी । बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी ॥
ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा । अकथ अनामय नाम न रूपा ॥
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ । नाम जीह जपि जानहिं तेऊ ॥
साधक नाम जपहिं लय लाएँ । होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ ॥
जपहिं नाम जन आरत भारी । मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ॥
राम भगत जग चारि प्रकारा । सुकृती चारिउ अनघ उदारा ॥
चहूँ चतुर कहुँ नाम अधारा । ग्यानी प्रभुहिं बिसेषि पिआरा ॥
चहुँ जुग चहुँ स्त्रुति नाम प्रभाऊ । कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ

सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम-पियूष-हृद, तिन्हहुँ किये मन मीन॥
अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरे मत बड़ नाम दुहूँ तें। किये जेहि जुग निज बस निज बूतें॥
प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की। कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की॥
एक दारु गत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू॥
उभय अगम जुग सुगम नाम तें। कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें॥
व्यापक एकु ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन-घन आनँदरासी॥
अस प्रभु हृदय अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी।
नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥

निरगुन तें यहि भाँति बड़, नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड़ राम तें। निज बिचार अनुसार॥

राम भगत हित नर तनु धारी। सहि संकट किय साधु सुखारी॥
नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल बासा॥
राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
रिषि हित राम सुकेतु सुता की। सहित सेन-सुत कीन्हि बिबाकी॥
सहित-दोष दुख दास दुरासा। दलइ नाम जिमि रबि निसि नासा॥
भंजेउ राम आपु भव चापू। भव-भय-भंजन नाम प्रतापू॥
दंडक बन प्रभु कीन्ह सोहावन। जन मन अमित नाम किय पावन॥
निसिचर निकर दले रघुनंदन। नाम सकल कलि-कलुष निकंदन॥
सबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, बेद बिदित गुन गाथ॥

नीर सुकण्ठ बिभीषण दोऊ। राखे सरन जान सब कोऊ॥
नाम गरीब अनेक नेवाजे। लोक बेद बर बिरद बिराजे॥
राम भालु कपि-कटकु बटोरा। सेतु हेतु स्रम कीन्ह न थोरा॥
नाम लेत भव सिंधु सुखाहीं। करहु बिचार सुजन मन माहीं॥
राम सकुल रन रावन मारा। सीय सहित निज पुर पगु धारा॥
राजा राम अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनिवर बानी॥
सेवक सुमिरत नाम सप्रीती। बिनु स्रम प्रबल मोह दल-जीती॥
फिरत सनेह मगन सुख अपने। नाम प्रसाद सोच नहिं सपने॥

ब्रह्म राम तें नामु बड़, बर दायक बरदानि।
राम चरित सत कोटि महँ, लिय महेस जिय जानि॥

नाम प्रसाद संभु अबिनासी। साजु अमंगल मंगल रासी॥
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी॥
नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि हरिहर प्रिय आपू॥
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू॥
ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ॥
सुमिरि पवन सुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥
अपतु अजामिलु गज गनिकाऊ। भये मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥
कहहुँ कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥
नामु राम को कलपतरु, कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग तें, तुलसी तुलसी दासु॥
चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। भये नाम जपि जीव बिसोका॥
बेद-पुरान संत-मत एहू। सकल सुकृत-फल राम सनेहू॥

ध्यानु प्रथम जुग मख विधि दूजे । द्वापर परितोषत प्रभु पूजे ॥
कलि केवल मल-मूल-मलीना । पाप-पयोनिधि जन-मन-मीना ॥
नाम काम तरु काल कराला । सुमिरत समन सकल जग जाला॥
राम नाम कलि अभिमत दाता । हित परलोक लोक पितु माता ॥
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू । राम नाम अवलंबन एकू ॥
काल नेमि कलि कपट निधानू । नाम सुमति समरथ हनुमानू ॥

राम नाम नर केसरी, कनक कसिपु कलि कालु ।
जापक जन प्रहलाद जिमि, पालिहि दलि सुर सालु ॥

——— रामचरित मानस से

विनय के पद

(१)

गाइये गनपति जगवंदन । संकर सुवन भवानी नंदन ॥
सिद्धि-सदन गज-वदन विनायक । कृपासिंधु सुन्दर सब लायक
मोदक प्रिय मुद मंगल दाता । विद्या बारिधि बुद्धि विधाता ॥
माँगत तुलसि दास कर जोरे । बसहिं राम-सिय मानस मोरे ॥

(२)

बावरो रावरो नाह भवानी ॥
दानि बड़ो दिन, देत दए बिनु, बेद बड़ाई भानी ॥
निज घर की वर बात बिलोकहु हौ तुम परम सयानी ॥
सिव की दई सम्पदा देखत श्री सारदा सिहानी ॥

जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुख की नहीं निसानी ॥
तिन रंकन को नाक सँवारत, हौं आयो नकबानी ॥
दुख दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी ॥
यह अधिकार सौंपिए औरहिं, भीख भली मैं जानी ॥
प्रेम प्रशंसा-विनय-व्यंग जुत, सुनि विधि की वर बानी ॥
तुलसी मुदित महेस, मनहिं मन जगत मातु मुसकानी ॥

(३)

कबहुँक अंब अवसर पाई।
मेरि औ सुधि द्याय बी, कछु करुन कथा चलाइ ॥
दीन सब अंग हीन छीन, मलीन अघी अघाइ ॥
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ ॥
बूझि है "सो है कौन ? कहिवी नाम दसा जनाइ" ॥
सुनत राम कृपालु के मेरी बिगरि औ बनी जाइ ॥
जानकि जग जननि जन की, किए वचन सहाइ ॥
तरै तुलसीदास भव तव नाथ गुन-गान-गाइ ॥

(४)

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी ॥
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंज हारी ॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मो सो ॥
मो समान आरत नहिं, आरति हर तोसो ॥

सखा तू, हौं जीव, तुही ठाकुर, हौं चेरो ॥
तात, मात, गुरु, सखा तू सब विधि हितु मेरो ॥
तोहि, मोहि, नाते अनेक मानिये जो भावै ॥
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु ! चरन सरन पावै ॥

(४)

सुनु मनु मूढ सिखावन मेरो।
हरिपद-विमुख लह्यो न काहु सुख सठ यह समुझि सबेरो ॥
बिछुरे रवि, ससि मन, न नयननि तें पावत दुख बहुतेरो ॥
भ्रमत स्रमित निसि दिवस गगन मँह, तँह रिपु राहु बड़ेरो ॥
जद्यपि अति पुनीत सुर-सरिता तिहुँ पुर सुजस घनेरो ॥
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित बहिबो ताहू केरो ॥
छुटै न विपति भजे बिनु रघुपति स्रुति संदेह निबेरो ॥
'तुलसिदास' सब आस छाँड़ि करि होहि राम कर चेरो ॥

(६

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ?
काको नाम पतित-पावन जग ! केहि अति दीन पियारे ?
कौन देव बराय बिरद-हित, हठि-हठि अधम उधारे ?
खग-मृग, ब्याध, पषान, बिटप, जड़ जमन कवन सुर तारे।
देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब माया-बिवस बिचारे।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे ?

(७)

अब लौं नसानी अब न नसैहौं।
राम कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिर न डसैं हौं॥
पायो नाम चारु चिन्ता-मनि, उर कर तें न खसै हौं॥
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसै हौं॥
पर बस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन, निज बस ह्वै न हँसैं हौं॥
मन मधुकर पन करि तुलसी रघुपति पद-कमल बसैं हौं॥

८)

केसव कहि न जाइ का कहिए?
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहि मन रहिए॥
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे॥
धोये मिटै न मरै भीति दुख पाइय यहि तनु हेरे॥
रविकर नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहिं॥
बदन हीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहिं॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै॥
तुलसी दास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहचानै॥

(९)

हे हरि! कवन दोष भ्रम भारी?
जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी॥
अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहिं जाइ गोसाईं॥
बिनु बाँधे निज हठ-सठ परबस परयो कीर की नाईं॥

सपने व्याधि विविध व्याधा भई, मृत्यु उपस्थित आई।।
बैद्य अनेक उपाय करहिं, जागे बिनु पीर न जाई ।।
श्रुति गुरु-साधु सुमृति-संमत यह दृश्य सदा दुखकारी।।
तेहि बिनु तजे, भजे बिनु रघुपति विपति सकै को टारी।।
बहु उपाय संसार-तरन कहँ विमल गिरा श्रुति गावैं ।।
तुलसिदास'मैं मरि'ममए बिनु जिय सुख कबहुँ न पावै ।।

(१०)

मैं हरि पतित पावन सुने ।
मैं पतित, तुम पतित पावन, दोउ बानक बने ।।
व्याध, गनिका, गज, अजामिल साखि निगमनि भने ।।
और अधम अनेक तारे जात कापै गनै ?
जानि नाम अजान लीन्हे, नरक जम पुर मनें ।।
दास तुलसी सरन आयो राखिए अपने ।।

(११)

मन पछि तैहै अवसर बीते ।
दुर्लभ देह पाइ हरि-पद भजु करम वचन अरु ही ते ।।
सहस बाहु दस बदन आदि नृप बचे न काल-बली ते ।।
हम-हम करि धन धाम सँवारे, अन्त चले उठि रीते ।।
सुत बनितादि जानि स्वारथ-रत न करु नेह सबहीतें ।।
अन्तहुँ तोहि तजैंगे पामर ! तू न तजै अब ही तें ।।
अब नाथहिं अनुराग जागु जड़ त्यागु दुरासा जी तें ।।
बुझै न काम अगिनि तुलसी, कहुँ विषय भोग बहु घी तें।।

—विनय पत्रिका से

राम-वनवास

सवैया

कीर के कागर ज्यों नृप चीर विभूषन उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगबास के रूख ज्यों, पंथ के साथ ज्यों लोग लुगाई॥
संग सुबंधु पुनीत प्रिया मनो धर्म-क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई॥१॥
नाम अजामिल से खल कोटि अपार नदीं भव बूड़त काढ़े।
जो सुमिरे गिरि मेरु सिलाकन होत अजाखुर बारिधि बाढ़े॥
तुलसी जेहि के पद-पंकज तें प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े।
ते प्रभु या सरिता तरिबे कहँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े॥२॥
यहि घाट तें थोरिक दूर अहै, कटि लौं जल थाह दिखाइहौं जू।
परसे पग धूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू॥
तुलसी अवलम्बन और कछू लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू।
बरु मारिए मोहि बिना पग धोये हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू॥३॥

कवित्त

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे-बारे,
केवट की जाति कछु बेद न पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरो याही लागि राजा जू,
हौं दीन बित्त-हीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं।

गौतम की घरनी ज्यों तरैगी तरनी मेरी,
प्रभु सों निषाद ह्वै के बाद न बढ़ाइहौं।
तुलसी के ईस राम ! रावरे सों साँची कहौं,
बिना पग धोये नाथ नाव न चढ़ाइहौं॥४॥

प्रभु रुख पाइ कै बुलाइ बाल घरनिहि,
बन्दि के चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि-घेरि॥
छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गंगा जू को,
धोइ पाँय पियत पुनीत बारि फेरि-फेरि॥
तुलसी सराहैं ताको भाग सानुराग सुर,
बरषैं सुमन जय-जय कहैं टेरि-टेरि॥
बिबिध सनेह-सानी, बानी असयानी सुनि,
हँसे राघौ जानकी लषन तन हेरि-हेरि॥५॥

सवैया

पुर तें निकसी रघुबीर बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की पुट सूखि गये मधुराधर वै॥
फिर बूझति हैं "चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै"।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै॥
जल को गये लक्खन हैं लरिका, परिखौ पिय छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेऊ बयारि करौं, अरु पाँय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े॥
तुलसी रघुबीर प्रिया श्रम जानि कै बैठि बिलंबु लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यो, पुलको तनु बारि बिलोचन बाढ़े॥७॥

सीस जटा उर बाहु बिसाल बिलोचन लाल तिरीछि सी भौंहैं।
तून सरासन बान धरैं, तुलसी बन मारग में सुठि सोहैं॥
सादर बारहिं बार सुभाय, चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं।
पूछति ग्राम वधू सिय सौं कहौ साँवरे से सखि रावरे को हैं ॥८॥
सुनि सुन्दर बैन सुधारस साने सयानी हैं जानकी जानि भली॥
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हें समुझाइ कछु मुसुकाइ चली॥
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन लाहु अली।
अनुराग तड़ाग में भानु उदै बिगसी मनु मंजुल कंज कली॥९॥
प्रेम सौं पीछे तिरीछे प्रियाहि चितै, चितु दै चले लै चित चोरे।
स्याम सरीर पसेउ लसे, हुलसे तुलसी छबि सों मन मोरे॥
लोचन लोल चलैं भृकुटी कल काम कमान हु सो तृन तोरे।
राजत राम कुरंग के संग, निषंग कसे धनु सो सर जोरे॥१०॥
सर-चारिक चारु बनाइ कसे कटि, पानि सरासन सायक लै।
बन खेलत राम फिरैं मृगया, तुलसी छबि सो बरनै किमि कै॥
अवलोकि अलौकिक रूप मृगी मृग चौंकि चकैं चितवैं चितु दैं।
न डगैं, न भगैं जिय जानि सिलीमुख पंचधरे रतिनायक हैं॥११॥
बिन्ध्य के बासी उदासी तपोब्रत धारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी, तुलसी सो कथा सुनो भे मुनि बृंद सुखारे॥
ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद-मंजुल कंज तिहारे।
कीन्ही भली रघुनायक जू करुना करि कानन को पग धारे॥१२॥

कवितावली से—

सेनापति

सेनापति का जन्मकाल संवत् १६४६ के आसपास माना जाता है। इन्होंने कवित्त रत्नाकर के प्रारम्भ में अपना वंश-परिचय दिया है। उसके आधार पर ये दीक्षित गोमिय कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम गंगाधर, पितामह का परशुराम और गुरू का हीरामणि दीक्षित था। छंद के द्वितीय चरण के अर्द्धांश—'गंगातीर बसति अनूप जिन पाई है'—के अनुसार इन्हें अनूप शहर—निवासी सिद्ध किया गया है, परन्तु यह निर्विवाद रूप से नहीं कहा जा सकता कि वे अनूपशहर में ही उत्पन्न हुए थे। अपना परिचय इन्होंने इस प्रकार दिया है:—

दीक्षित परसुराम दादो है विदित नाम,
जिन कीन्हें यज्ञ, जाकी जग में बड़ाई है।
गंगाधर पिता गङ्गाधर के समान जाकी,
गंगातीर बसति अनूप जिन पाई है॥
महाजानिमनि,विद्यादान हूँ कौ चिंतामनि,
हीरामणि दीक्षित तें पाई पंडिताई है।
सेनापति सोई, सीतापति के प्रसाद जाकी,
सब कवि कान दै सुनत कविताई है॥

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि सेनापति का सम्बन्ध मुसलमानी दरबार से भी था, किन्तु उन्हें मुसलमानों की दासता से विरक्ति हो गई थी। धन-लिप्सा तथा अन्यान्य प्रलोभनों से वे बचना चाहते थे। किस मुसलमान शासक के यहाँ ये रहते थे, इसका कुछ पता नहीं चलता। संभव है ये बुलन्दशहर के उन बड़े गुज्जर राजाओं के आश्रय में रहे हों, जो कि जहाँगीर के समय में मुसलमान होगये थे।

सेनापति ने संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया था। साहित्यिक परम्परा से वे भली भाँति परिचित थे। इन्हें अपनी कविता को सुरक्षित रखने की विशेष इच्छा थी। अनुमान है कि इसी उद्देश्य से इन्होंने कवित्त छंद में रचना की और अपना उपनाम 'सेनापति' रक्खा जो कवित्त के अतिरिक्त अन्य किसी छंद में सरलता से नहीं छिपाया जा सकता। इन्होंने अन्य कवियों के भावों को अपने काव्य में आश्रय नहीं दिया है। ये स्वाभिमानी प्रकृति के कवि थे। इन्होंने स्थान-स्थान पर जो गर्वोक्तियां कही हैं, वे उतनी नहीं उचित प्रतीत होती हैं। ये आत्म-सम्मान को ही सम्पत्ति समझते थे। पद पड़ने पर तुच्छ व्यक्तियों के आगे हाथ फैलाना इनकी प्रकृति के विरुद्ध था। भक्ति के क्षेत्र में भी इन्होंने अपनी इस प्रकृति का आभास दिया है:—

आपने करम करि हौंही निबहौंगो, तौब
हौं ही करतार, करतार तुम काहे के ?

ये प्रधानतः राम के भक्त थे, किन्तु वैष्णव धर्म की उदारता के प्रभाव से इन्होंने कृष्ण भक्ति परक रचना भी की है। कहा जाता है कि अपने जीवन के अंतिम दिनों में ये वृन्दावन में जा कर रहे थे।

इनके लिखे हुए दो ग्रन्थ बतलाये जाते हैं—१-'काव्य-कल्पद्रुम' २-'कवित्त रत्नाकर'। 'काव्य कल्पद्रुम' अभी देखने में नहीं आया। 'कवित्त रत्नाकर' इनकी अंतिम रचना जान पड़ती है। इसका रचना-काल संवत् १७०६ है, जैसा कि निम्नलिखित दोहे से प्रकट है—

संवत सत्रह सै छ में, सेइ सियापति पाइ।
सेनापति कविता सजी, सज्जन सजौ सहाइ॥

सेनापति का रचना-काल रीतिकाल के प्रारम्भ में माना जाता है। यों तो महाकवि केशव ने संवत् १६५८ में 'कवि प्रिया' की रचना करके रीति-काव्य-रचना की नींव डाल दी थी, किंतु उसकी परम्परा का प्रारम्भ

चिंतामणि त्रिपाठी से—संवत् १७०० के लगभग से—होता है । एक ओर भक्ति-काल की प्रवृत्ति विलीन होती जा रही थी और दूसरी ओर रीति-कालीन परम्परा का अंकुर जमने लग गया था। सेनापति की रचनाओं में उक्त दोनों कालों की प्रवृत्तियों का समावेश मिलता है । राम भक्ति-परक छन्दों की रचना करके ये सहज ही भक्तिकाल के कवियों की श्रेणी में जा बैठते हैं, तो 'ऋतु वर्णन' में रीति-कालीन विशेषताओं के कारण उनकी गणना रीति-कालीन कवियों में की जा सकती है, परन्तु उन्होंने दोनों ही कालों की परिपाटी का निर्वाह मात्र करने के लिए कविता नहीं की।

सेनापति पर अलंकारों का प्रभाव अधिक है । उनका 'अलंकार' शब्द बहुत व्यापक है। उसके अंतर्गत शब्दालंकार तथा अर्थालंकार ही नहीं, वरन् वे सब गुण आ जाते हैं, जिनसे काव्य अलंकृत होता है। ये रस सम्प्रदाय से भी प्रभावित हुए हैं, किंतु बहुत नहीं। अलंकारों की प्रधानता के कारण उनका ध्यान रसोत्कर्ष पर नहीं जमने पाता । उनके लिए अलंकार साधन नहीं; साध्य है, वर्णन-शैलियाँ नहीं, वर्ण्य वस्तु है। इसीलिए 'कवित्त रत्नाकर' की प्रथम तरंग में इन्होंने अपनी श्लिष्ट रचनाओं का संग्रह किया है और उसका नाम 'श्लेष-वर्णन' रक्खा है।

इनकी रचनाओं में शृङ्गार, वीर, रौद्र, भयानक तथा शांत रस मिलता है, किंतु शृङ्गार रस का प्राधान्य है। इस रस के आलंबन नायक नायिका हैं। यद्यपि नायक-नायिकाओं के स्वाभाविक सौंदर्य-वर्णन के छंद इन्होंने थोड़े लिखे हैं, तथापि वे सजीव हुए हैं। ऐसे वर्णनों में कवि ने मौलिकता से काम लिया है। नायिकाओं में 'मुग्धा' पर कुछ छंद अत्यंत सुंदर बन पड़े हैं। इनके शृङ्गार वर्णन में अश्लीलत्व बहुत कम मिलता है। वह केवल श्लेष वर्णन के कुछ कवितों में ही दिखाई पड़ता है । 'श्लेष' की झोंक में वे कहने, न कहने योग्य सब कुछ कह गये हैं।

वीर रस के चित्रण में इन्होंने तोपों की गड़गड़ाहट और तलवारों की छनछनाहट पर उतना ध्यान नहीं दिया, जितना युद्ध की तैयारी के वर्णन में। राम का सेना एकत्रित करना, हनुमान को सीता की खोज में भेजना, सेतु बांधने का आयोजन करना आदि विषयों की ओर कवि ने अधिक ध्यान दिया है। इसी कारण इनकी रचनाओं में वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है। इन्होंने राम रावण के युद्ध में विपक्षी रावण के शौर्य का भी राम के शौर्य के समान ही चित्रण किया है। इससे वर्णन में अधिक सजीवता आ गई है।

उद्दीपन विभाग के रूप में सेनापति का 'प्रकृति-वर्णन' अत्यंत उत्कृष्ट है। तत्कालीन परम्परा के अनुसार पुष्पवाटिका, चन्द्रोदय, शीतल मंद समीर तथा विभिन्न ऋतुओं के स्थूल स्वरूपों के चित्रण में इन्होंने अनुपम कौशल का परिचय दिया है। प्रकृति के प्रति उनके हृदय में पर्याप्त अनुराग था। कई स्थलों पर प्रकृति के रम्य रूपों से प्रभावित हो कर कवि उनके चित्रण का उद्योग करता है, पर परम्परा के कारण उद्दीपन की भावना अज्ञात रूप से आ ही जाती है।

'सेनापति' ने बारह मासों का वर्णन विस्तार के साथ किया है। यद्यपि उसका लक्ष्य भी 'उद्दीपन' ही है तथापि ऐसे भी छंद हैं, जिनमें कवि ने प्रकृति का स्वतंत्र निरीक्षण करने का प्रयत्न किया है। सेनापति ग्रीष्म-ऋतु से अधिक प्रभावित जान पड़ते हैं। ग्रीष्म का वर्णन करने में कवि ने अपनी काव्योचित भावों की पराकाष्ठा कर दी है:—

वृष कौं तरनि तेज सहसौं किरन करि,
ज्वालन के जाल बिकराल बरसत है।
तचति धरनि, जग जरत झरनि, सीरी
छाँह कौं पकरि पंथी पंछी बिरमत है॥

सेनापति नैक दुपहरि के टरत, होत
घमका विषम, न पात खरकत है।
मेरे जान पौनौं सीरी ठौर को पकरि कौनौं,
घरी एक बैठि कहूँ घामै बितवत है।

दोपहर पश्चात् की उमस से सारे संसार की व्याकुलता का ऐसा प्रभावशाली वर्णन अन्य कवियों की रचना में दुर्लभ है। ग्रीष्म के भीषण ताप से त्रस्त हो कर किसी ठंढी जगह में बैठ कर पवन के विश्राम करने की कल्पना एक दम नवीन है। ऐसे सुन्दर वर्णन शृङ्गारी कवियों की रचनाओं में बहुत कम मिलेंगे। इसी प्रकार वर्षा और शीत ऋतु के वर्णनों में भी कवि ने अपनी अपूर्व प्रतिभा और कल्पना शक्ति का परिचय दिया है। उनके ऋतुवर्णन और बारहमासे को पढ़ने से स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि सेनापति ने प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण किया था।

सेनापति के ऋतु-वर्णन में प्रत्येक ऋतु में राज-महलों की स्थिति विशेष के वर्णन भी पाये जाते हैं। इसका कारण यह है कि तत्कालीन शृंगारी कवियों का अधिकतर जीवन राजदरबारों में ही व्यतीत होता था। वे अपने आश्रयदाता के वैभव-विलास तथा तत्सम्बन्धी वस्तुओं राज-महल, वाटिका आदि—के वर्णनों से अपनी लेखनी को कृतकृत्य किया करते थे। सेनापति भी इस परम्परा से अपने को नहीं बचा सके। सेनापति में अन्य कवियों से यह विशेषता है कि उनकी दृष्टि रंगीन दुशालों और गरम हम्मामों तक ही सीमित नहीं रही, कभी कभी अलाव जलाकर तापते हुए साधारण स्थिति के मनुष्यों पर भी पड़ गई है—

"धूम नैन बहैं, लोग आगि पर गिरे रहैं,
हिए सौं लगाई रहैं नैक सुलगाइ कै।
मानो भीत जानि, महासीत तें पसारि पानि,
छतियां की छांह राख्यौ पावक छिपाइ कै।"

मानव-जीवन की विविध परिस्थितियों में प्रवेश करके उनका सहृदयता पूर्वक अनुभव सेनापति ने किया है।

सेनापति को शब्द-श्लेष अलंकार अधिक प्रिय था। 'कवित्त रत्नाकर' में 'श्लेष वर्णन' के अधिकांश छंद शब्द-श्लेष के ही उदाहरण हैं। उनमें अलंकारों का समावेश भी पर्याप्त रूप से हुआ है। अर्थालंकारों में भी यमक सुनक अलंकार ही प्रचुरता से पाये जाते हैं। सेनापति ने श्लिष्ट शब्दों के चुनाव में संस्कृत का सहारा नहीं लिया, उन्होंने उन्हीं संस्कृत शब्दों को प्रयुक्त किया है, जो हिंदी में प्रचलित हो गये थे, इससे उनको समझने में पढ़े-लिखे व्यक्तियों को अधिक कठिनाई नहीं होती।

यद्यपि सेनापति का रचना-काल भक्ति काल तथा रीतिकाल का संधिकाल था, पर भाषा की सजावट की दृष्टि से उनकी रचना में रीतिकालीन पद्धति के ही दर्शन होते हैं। भक्त कवि काव्य के अंतरंग पर जितना ध्यान देते हैं, उतना भाषा को सजाने पर नहीं, परंतु सेनापति ने भाषा-सौंदर्य को बढ़ाने का प्रयत्न विशेष रूप से किया है। उनकी भाषा का सौंदर्य भावों की सम्पन्नता के फल स्वरूप न होकर अलंकारों की तड़क भड़क के कारण ही है। सेनापति शुद्ध ब्रजभाषा लिखने में दक्ष थे। उन्होंने ब्रजभाषा के साधारण से साधारण शब्दों द्वारा बड़ी सुन्दर रचना की है। उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का व्यवहार कम हुआ है। विदेशी शब्दों का प्रयोग भी यत्र-तत्र मिलता है, जिनमें फारसी भाषा के शब्दों की प्रधानता है।

सेनापति की भाषा में प्रसाद तथा ओज गुण की प्रधानता है। ओज गुण लाने के लिए उन्होंने शब्दों को द्वित्व करने की परिपाटी का निर्वाह किया है। किंतु ऐसे शब्द बहुधा छप्पयों में ही मिलते हैं। माधुर्य की ओर कवि का ध्यान अधिक न था। सेनापति की भाषा सुव्यवस्थित और परिमार्जित है, उसमें शब्दों के विकृत रूप अधिक नहीं मिलते।

सेनापति

सुरतरु सारथी, सँवारी है बिरंचि पचि,
कंचन रचित चिन्तामनि के जराइ का।
रानी कमला कौं पिय-आगम कहन हारी,
सुरसरि सखी, सुख दैनी प्रभु पाइ की।
बेद मैं बखानी, तीनि लोकन की ठकुरानी,
सब जग पानी सेनापति के सहाइ की।
देव-दुख-दंडन भरत-सिर-मंडन वे,
बन्दौं रूप संडन खराऊँ रघुराई की ॥१॥
मूढ़न को अगम, सुगम एक ताकौं जाकी,
तीछन अमल बिधि बुद्धि है अथाह की।
कोई है अभंग, कोई पद है सभंग, सोधि,
देखे सब अंग, सम सुधा के प्रवाह की।
ज्ञान के निधान,छंद कोप, सावधान जाकी,
रसिक सुजान सब करत हैं गाहकी।
सेवक सियापति कौं, सेनापति कवि सोई,
जाकी द्वै अरथ कविताई निरवाह की ॥२॥
तुकन सहित भले फल कौं धरत सूधे,
दूर को चलत जेहैं धीर जिय व्यारी के।
लागत बिबिध पक्ष सोहत हैं गुन संग,
स्रवन मिलत मूल कीरति उज्यारी के।

सोई सीस धुनैं जाके उर मैं चुभत नीके,
बेग बिधि जात मन मोहैं नर नारी के।
सेनापति कवि के कवित्त बिलसत अति,
मेरे जान बान हैं अचूक चापधारी के॥३॥

नाहीं-नाहीं करै थोरो माँगैं सब दैन कहैं,
मंगन कौं देखि पट देत बार बार हैं।
जिनकौं मिलत भली प्रापति की घटी होति,
सदा सब जन-मन भाए निरधार हैं।
भोगी ह्वै रहत बिलसत अवनी के मध्य,
कन कन जोरैं दान पाठ परिवार हैं।
सेनापति बचन की रचना बिचारौ जामैं,
दाता अरु सूम दोऊ कीन्हें इकसार हैं॥४॥

गीतहिं सुनावैं बिलकन झलकावैं भुज—
मूल न छिपावैं द्वार काहू के पयान ही।
बैसनव भेष भगवत की बड़ाई लहिं,
सबैं हरि साहिबैं न साँच है निदान ही।
देखि के निपात सोधी सबनकी सारि होति,
मोहिं के बिरुध धरैं मन-धन-ध्यान ही।
सेनापति सुमति बिचार देखौ भली भाँति,
कलि के गुसाईं मानो माँगना समान ही॥५॥
पावन अधिक सब तीरथ तैं जाकी धार,
जहाँ मरि पापी होत सुर पुरपति हैं।

देखत ही जाकौं भलो घाट पहिचानियत,
एक रूप बानी जाके पानी की रहति है ।
बड़ी रज राखे जाकौं महा धीर तरसत,
सेनापति ठौर ठौर नीकी पै बहति है ।
पाप पतित्यारि के कतल करिवे कौं गंगा,
पुन्य की असील तरवारिसी लसति है॥६॥

द्विजन की आयें मरजाद छूटि जात भेष,
पहिले बरन कौं न तन को निदान है ।
अंग छबि लीन स्रुति धुनि सुनिये न सुख,
लागी अब लार है न नाक हू कौं ज्ञान है ।
देखिये जवन छोभा पनी जुग तीन माँझ,
नाम हूँ कौं नातो कृष्ण के सो कौ जहाँन है
सेनापति जामें जग आसा ही सौं भटकत,
याही तें बुढ़ापौ कलि काल के समान है ।७॥

कुसलव रस करि गाई सुर धुनि कहि,
भाई मन सन्तन के त्रिभुवन जानी है ।
देवन उपाय कीनौं यहै भौ उतारन कौं,
बिमद बरन जाको सुगं सम बानी है ।
भुवपति रूप देह धारी पुन सील हरि,
आई सुर पति तें धरनि सिंगरानी है ।
तीरथ सरस सिरोमनि सेनापति जानौ,
राम की कहानी गंगा धार सी बखानी है ॥८।

जाके रोज नामे सेस सहस बदन पढ़े,
पावत न पार ऐसे सागर सुमति कौं।
कोई महाजन ताकी सरि कौं न पूजें नभ,
जल थल व्यापि रहे अद्‌भुत गति कौं।
एक-एक पुर पीछे अगनित कोठा तहाँ,
पहुँचत आप सदा साथी सुरति कौं।
जानियै बखानें जाकी हुंडी न फिरति कोई,
साहु सियरानी जू कौ साहु सेनापति कौं ॥९॥

ऋतु-वर्णन

बरन बरन तरु फूले उपवन बन,
सोई चतुरंग संग दल लहियत है।
बन्दी जिमि बोलत बिरद बीर कोकिल है,
गुंजत मधुप गान गुन गहियत है।
आवै आस पास पुहुपन की सुवास सोई,
सोंधे के सुगन्ध माँझ सने रहियत है।
सोभा कौं समाज सेनापति सुख साज, आज
आवत बसंत ऋतु राज कहियत है ॥१०॥

लवत, कुटज, घन, चम्पक, पलास बन
फूली सब सारा जे हरति जन चित्त हैं।
सेत, पीत, लाल फूल लत हैं बिसाल तहाँ,
आछे अति अछर जे कारज के मित्त हैं।

सेनापति माधव महीना भरि नेम कर,
बैठे द्विज कोकिल करत घोष नित्त हैं।
कागद रंगीन पै प्रवीन हैं बसन्त लिखे,
मानों काम चक्रवै के विक्रम कवित्त हैं॥१॥
लाल लाल केसू फूलि रहे हैं विसाल संग
स्याम रंग भेंट मानौं मसि मैं मिलाए हैं।
तहाँ मधु काज आइ बैठे मधुकर पुंज,
मलय पवन उपवन वन धाए हैं।
सेनापति माधव महीना मैं पलास तरु,
देखि देखि भाउ कविता के मन आए हैं।
आधे अनसुलगि सुलगि रहे आधे, मानौं,
बिरही दहन काम क्वैला परचाए हैं॥ २॥
जेठ नजिकाने सुधरत खस खाने तल,
ताप तहखाने के सुधारि झारियत हैं।
होति हैं मरम्मत बिबिध जल जंत्रनि कौ,
ऊँचे ऊँचे अटा ते सुधा सुधारियत हैं।
सेनापति अतर-गुलाब-अरगजा साजि
सार, तार-हार मोल लै लै धारियत हैं।
ग्रीषम के बासर बराइबे कौं सीरे सब,
राज भोग काज साज यौं सम्हारियत हैं॥३॥
वृष कौ तरनि तेज सहसौ किरन करि,
ज्वालन के जाल बिकराल बरसत हैं।

तचति धरनि, जग जरत झरनि सीरी,
छाँह कौं पकरि पंथी-पंछी बिरमत हैं।
सेनापति नैक दुपहरी के ढरत होत,
धमका विषम, ज्यों न पात खरकत हैं।
मेरे जान पौनौं सीरी ठौर कौ पकरि कोनौं,
घरी एक बैठो कहूँ घामैं बितवत हैं ॥१४॥

सेनापति ऊँचे दिनकर के चलति लुवै,
नद-नदी कुएँ कोपि डारत सुखाइ कै।
चलत पवन, मुरझात तरवन, बन,
लाग्यो है तवन, डारयो भूतलौ तचाइ कै।
भीषम तपत ऋतु ग्रीषम सकुचि तातैं,
सीरक छिपी है तहखानन मैं जाइकै।
मानों सीतकाल, सीतलता के जमाइबे कौं,
राखे हैं बिरंचि बीज धरा मैं धराइकै ॥१५॥

छूटत फुहारैं सोई बरसा सरस रितु,
और गुलाब है सरद छिरकाइ की।
हेमंत सिसिर हूँ ते सीरे तहखाने जहाँ,
छिन रहैं तपति निदाघ उग्र ताइ की।
फूले तरवर, फुलवारी फूल सौं भरत,
सेनापति सोभा सों बसंत के सुभाइ की।
ग्रीषम के समैं साँझ, राजमहलन माँझ,
पैयति है सोभा षट ऋतु समुदाई की ॥१६॥

दामिनी दमक सोई मंद बिहसनि. बग—
माल है बिसाल सोई मोतिन कौ हारो है।
बरन-बरन घन रंगित बसन तन,
गरज गरूर सोई गाजत नगारो है।
सेनापति सावन कौ बरसा नवल बधू,
मानौं है बरति साजि सकल सिंगारो है।
त्रिविध बरन परयो इन्द्र कौ धनुष लाल,
पन्ना सौं जटित मानौं हेम खगवारो है॥१७॥

गगन अँगन घना घन तें सघन तम,
'सेनापति' नैकहू न नैन मटकत है।
दीप की दमक, जीगनान की झमक छाँडि,
चपला चमक और सौं न अटकत है।
रवि गयौ दबि, मानौं ससि सोऊ धसि गयौ,
तारे तोरि डोर स न कहूँ फटकत हैं।
मानौ महा तिमिर तें भूलि परी बाट तातें,
रवि ससि तारे कहूँ भूले भटकत हैं॥१८॥

'सेनापति' उनमें नये जलद सावन के,
चारिहू दिसान घुमरत भरे तोइ कै।
सोभा सरसाने, न बखाने जात काहू भाँति,
आने हैं पहार मानौं काजर के ढोइ कै।
घन सौं गगन छयो तिमिर सघन भयौ,
देखि न परत मानौं रबि गयो खोइ कै।

चारि मास भरि स्याम निसा के भरम करि,
मेरे जान याही तें रहत हरि सोइ कैं ॥१९॥

खंड खंड सब दिग मंडल जलद सेत,
'सेनापति' मानौं सृंग फटिका पहार कैं।
अंबर अडंम्बर सौं उमड़ि घुमड़ि छिन,
छिछकें छछारे छिति अधिर उछार के।
सलिल सहल मानौं सुधा के महल नभ,
तूल के पहल किधौं पवन अधार के।
पूरब को भाजत हैं, रजत से राजत हैं,
गग गग गाजत गगन घन क्वार के ॥२०॥

कातिक की राति थोरी थोरी सियराति,
'सेनापति' को सुहाति सुखी जीवन के गन हैं।
फूले हैं कुमुद, फूली मालती सघन बन,
फूली रहे तारे मानौ मोती अनगिन हैं।
उदित विमल चंद, चाँदनी छिटकी रही,
राम कैसो जस अध ऊरध गगन है
तिमिर हरन भयो, सेत है बरन सब,
मानहुँ जगत छीर-सागर मगन है ॥२१॥

बरन्यो कवि न कलाधर को कलंक, तैसो,
को सकै बरनि, कवि हू को मति छीनी है।
'सेनापति' बरनौं अपूरब जुगति ताहि,
सोधि कै बिचारी और भाँति बुद्धि दीनी है।

मेरे जान जे विक घों से मा होत जानि राखि,
तेवि के कलान रजनी की छबि कीनी है।
बढ़ती के राखे, रेनि हूँ ते दिन ह्वै है यातें,
आगरी मयंक ते कला निकासि लीनी है।२२॥

अब आयो माह प्यारे लागत हैं ताह, रवि,
करत न दाह जैसो अब रेखियत है।
जानियें न जात, पात कहत बिलात दिन,
छिन सौं न तातें तन कौ बिसेखियत है।
कलप सो राति सो तौ सोए न सिराति क्यौं हू,
सोइ सोइ जागे पैन प्रात पेखियत है
'सेनापति' मेरे जान दिन हूँ ते राति भई,
दिन मेरे ज्ञान सपने मैं देखियत है॥२३॥

आयौ जोर जड़ कालो परत प्रबल पालो,
लोगन कौ लालौ परयो, जिये कित जाइके।
ताप्यौं च है बारि कर तिन न संकत टारि,
मानौं हैं पराये ऐसे भए ठिठुराइ कै।
चित्र कैसो लिख्यो, तेज हीन दिन कर भयो,
अति सियराइ गयौ घाम पतराइ कै।
'सेनापति' मेरे जान सीत के सताए सूर,
राखे हैं सकोरि कर अंगर छपाइ कै॥२४॥
सिसिर मैं ससि को सरूप पावे सविताऊ,
घामहू मे चांदिनी की दुति दमकती है।

'सेनापति' होत सीतलता है सहस गुनी,
रजनी की झाईं बासर मैं झमकती है।
चाहत चकोर सूर-ओर दृग छोर करि,
चकवा की छाती तजि धीर धसकति है।
चंद के भरम होत मोद है कुमोदनी कौं,
ससि संक पंकजिनी फूलि न सकती है॥२४॥

सिसिर तुषार के बुखार से उखारत हैं,
पूस बीते होत सून हाथ-पाइ ठिर कै।
द्यौस की छुटाई की बड़ाई बरनी न जाइ,
'सेनापति' गाइ कछु सोचि कै सुमिरि कै।
सीत तैं सहस कर सहस चरन ह्वै कै,
ऐसे जात भाजि तम आवत है घिरि कै।
जौ लौं कोक कोकी कौं मिलत तौ लौं होति राति,
कोक अधबीच ही तैं आवत है फिरि कै॥२५॥

भूषण

रीति-काल में शृङ्गार की मधुर मुरली बजाने वाले अनेक कवियों के बीच में वीर रस का शंखनाद करने वाले ये प्रमुख कवि थे। ये चिंतामणि और मतिराम के भाई कहे जाते हैं। इनका जन्म काल संवत् १६७० माना जाता है। इनके असली नाम का पता नहीं, चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्रराम ने इन्हें कविभूषण की उपाधि दी थी। कोई इनका असली नाम मनिराम बतलाते हैं, कोई पतिराम। कुछ विद्वान् इनके मतिराम का भाई होने में भी संदेह करते हैं और दोनों कवियों के आश्रयदाताओं की नामावली का विश्लेषण कर इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि दोनों के आश्रयदाताओं का काल भिन्न-भिन्न होने के कारण ये दोनों कवि भाई नहीं हो सकते।

ये कई राजाओं के आश्रय में रहे। अन्त में इनके मन के अनुकूल आश्रयदाता छत्रपति महाराज शिवाजी मिले, जो इनके वीरकाव्य के नायक हुए। पन्ना के महाराज छत्रसाल के यहाँ भी इनका अच्छा सम्मान हुआ। कहते हैं कि महाराज छत्रसाल ने इनकी पालकी में कंधा लगाया था। ऐसा भी प्रसिद्ध है कि महाराज शिवाजी ने इन्हें एक-एक छंद पर लाखों रुपये और गाँव दिये थे।

कुछ विद्वान् भूषण को शिवाजी का समकालीन नहीं मानते। वे भूषण के आश्रयदाताओं की एक लम्बी सूची देकर यह सिद्ध करते हैं कि उनमें से अधिकांश शिवाजी के समकालीन नहीं थे। भूषण ने मुस्लिम शासन व्यक्ति होकर तत्कालीन हिन्दू राजाओं को प्रोत्साहित करने के लिए शिवाजी का गुण गान किया था। उन्होंने हिन्दुत्व की रक्षा के लिए शिवाजी को आदर्श समझा; शिवाजी के दरबार में रह कर उनकी अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशंसा नहीं की।

भूषण के जीवन के संबंध में कई किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि भावज के व्यंगवाणों से व्यथित होकर ये घर से निकल पड़े और काव्य स्फुरणा प्राप्त कर शिवाजी के दरबार में पहुँचे। दरबार में पहुँचने से पूर्व एक धर्मशाला में सिपाही वेष में शिवाजी को एक कवित्त अठारह बार सुनाने की जनश्रुति भी चली आती है, किन्तु इन सब का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। यदि इन्हें शिवाजी का समकालीन मान लिया जाय तो यह निश्चय रूप से मानना पड़ेगा कि इन्हें शिवाजी से पर्याप्त धन प्राप्त हुआ था, क्योंकि भूषण ने शिवाजी की दान-शीलता का वर्णन अत्यन्त विस्तार के साथ किया है।

इनका परलोक-वास संवत १७७२ के लगभग माना जाता है।

भूषण-रचित 'शिवराज भूषण', 'शिवाबावनी' और 'छत्रसालदशक' ये तीन ग्रन्थ ही मिलते हैं। इनके अतिरिक्त तीन ग्रन्थ और इनके लिखे हुए कहे जाते हैं–'भूषण उल्लास', 'दूषण उल्लास' और 'भूषण हजारा'। 'शिवराज भूषण' अलकारों का ग्रन्थ है। इसमें दोहों में अलकारों के लक्षण और कवित्त तथा सवैयों में अलंकारों के उदाहरण दिए हैं। उदाहरणों के आलम्बन प्रधानतः शिवाजी हैं। प्रत्येक कवित्त या सवैया में शिवाजी की दान-शीलता, पराक्रम, तलवार आदि का ओज पूर्ण वर्णन है।

'शिवा बावनी' बावन कवित्तों का संग्रह है। कहा जाता है कि ये बावन कवित्त वे ही हैं, जो कि भूषण ने शिवाजी को प्रथम भेंट पर गाये थे, पर यह कथन सत्य नहीं जान पड़ता, क्योंकि कुछ कवित्तों में ही घटनाओं का उल्लेख है, जो उस समय तक घटित ही नहीं हुई थीं। फुटकर कवित्तों का संग्रहमात्र है, इसमें आद्योपान्त कोई प्रबंध नहीं है।

छत्रसाल नाम के उस समय दो राजा हुए थे—एक पन्ना नरेश ...रे बूँदी नरेश। 'छत्रसाल दशक' में आठ घनाक्षरी और दो दोहे

संग्रहीत हैं, जो पन्ना नरेश छत्रसाल की प्रशंसा में लिखे गये हैं। कहते हैं कि भूषण ने अपने भाई मतिराम की प्रार्थना पर बूँदी नरेश छत्रसाल की प्रशंसा में भी दो कवित्त कहे थे; यह ग्रन्थ भी प्रबन्ध रूप में नहीं है, स्फुट काव्य है।

भूषण की कविता काव्य गुणों से युक्त होने के साथ-साथ ऐतिहासिक तथ्यों से भरी हुई है। भूषण बड़े सत्यवादी थे। उन्होंने शिवाजी के संबंध की घटनाओं का यथातथ्य वर्णन किया है। शिवाजी की प्रशंसा करना प्रधान लक्ष्य होने के कारण कुछ अतिशयोक्ति का आभास अवश्य मिलता है, पर सत्य की कहीं भी अवहेलना नहीं मिलती। यही कारण है कि अनेक इतिहासकारों ने भूषण की कविता के आधार पर इतिहास ग्रन्थों की रचना की है।

भूषण राष्ट्रीय कवि थे। आज 'राष्ट्रीयता' शब्द का जो अर्थ लगाया जाता है, वह उस समय नहीं लगाया जाता था। औरङ्गजेब के अत्याचारों से संत्रस्त होकर हिन्दू प्रजा ने संगठन की आवश्यकता को अनुभव किया और वह मुस्लिम शासक के विरुद्ध उठ खड़ी हुई। उस समय मुसलमान शासन होने के कारण विरोधी दल के रूप में थे। वे अब तक विदेशी माने जाते थे और हिन्दू इसी देश के होते हुए भी पीड़ित और अत्याचार ग्रस्त थे। इसलिए तत्कालीन राष्ट्रीयता का अर्थ 'हिन्दुत्व' था। भूषण ने अपनी कविता के द्वारा 'हिन्दुत्व' की भावना भर कर हिन्दुओं को संगठित करने का पूर्ण प्रयत्न किया और मुस्लिम शासन को उखाड़ कर हिन्दू साम्राज्य की स्थापना के स्वप्न देखे। सौभाग्य से उन्हें शिवाजी जैसा वीर और साहसी सेनानी भी मिल गया। इतिहास में प्रसिद्ध है कि शिवाजी को जीवन-भर औरङ्गजेब से युद्ध करना पड़ा। जिस प्रकार भारत के अँगरेजी शासन से मुक्त होने से पहले 'हिन्दू-अँगरेज-एकता' की कल्पना करना दुराशा थी, उसी प्रकार उस समय 'हिन्दू मुस्लिम-एकता' की बात करना असमीचीन और समय से पूर्व था। फिर

शिवाजी ने सारी मुस्लिम जाति को कभी नहीं कोसा, न सभी मुसलमान शासकों को गालियाँ दीं। उनका प्रधान शिकार तो अत्याचारी औरङ्गजेब तथा उसके मंत्री, सेनापति आदि थे, जो हिन्दू प्रजा को कष्ट देते रहते थे। 'बाबर, अकबर, हुमायूँ हद बाँधि गये' के द्वारा भूषण ने उक्त तीनों बादशाहों की प्रशंसा की है, क्योंकि उन्होंने हिन्दुओं के साथ अच्छा बर्ताव किया। औरङ्गजेब ने अपने पूर्वजों की लीक छोड़दी, अतः भूषण को उसकी निन्दा करनी पड़ी। आज भी जिन मुस्लिम शासकों ने प्रसन्नतापूर्वक अपने राज्यों को स्वतंत्र भारत में विलय कर दिया, उनकी सर्वत्र प्रशंसा होरही है और हैदराबाद के निजाम के साथ शत्रु का सा व्यवहार भारत सरकार को विवश होकर करना पड़ा, क्योंकि वह अपनी हिन्दू प्रजा को सताता था। इसलिए 'भूषण' कवि पर साम्प्रदायिकता का दोष लगाना वहीं तक ठीक है, जहाँ तक हम तो वर्तमान सरकार को साम्प्रदायिक बताना।

भूषण वीर रस के कवि थे। शृङ्गारी कवियों की शृङ्खला में होते हुए भी ये उससे बिल्कुल अलग रहे। परंतु तत्कालीन कवियों की रचना परिपाटी से ये अपने को नहीं बचा सके। यही कारण है कि प्रतिभाशाली कवि होते हुए भी इन्होंने महाराज शिवाजी की प्रशंसा में स्वच्छंदतापूर्वक किसी प्रबंध काव्य की रचना नहीं की, वरन् रीति-परम्परा की शृङ्खला में अपने आपको जकड़ लिया। परिणाम यह हुआ कि इनकी रचना में घटनाओं और भावों की पुनरावृत्ति होगई है। 'शिवराज भूषण' प्रधानतः अलंकारों का ग्रन्थ है, परंतु संस्कृत का अच्छा ज्ञान न होने के कारण भूषण अलंकारों के सही लक्षण देने में कृतकार्य नहीं हो सके। अलंकार शास्त्र के विद्यार्थी को उससे कोई सहायता नहीं मिल सकती।

भूषण की कविता वड़ी ओजस्विनी और वीर-दर्प पूर्ण है। वीर रस के सहयोगी रौद्र और भयानक रस का समावेश भी उसमें है। शिवाजी की धाक, तलवार की चमक, दान शीलता आदि का वर्णन बहुत उत्कृष्ट

है। शिवाजी की धाक से शत्रुओं की स्त्रियों की दुर्दशा का बहुत ही सजीव चित्र खींचा है। शिवाजी ने कभी भी शत्रुओं की स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार नहीं किया, अपितु विजित शत्रु की नारियों को ससम्मान उनके डेरों पर पहुँचाने के उदाहरण इतिहास में मिलते हैं। भूषण ने शिवाजी के इस गौरव को अक्षुण्ण रखते हुए केवल उनकी धाक से ही शत्रु की व्याकुलता का वर्णन किया है; यथा—

"उतरि पलंग ते न दियो है धरा पै पग,
तेऊ सगबग निसि दिन चली जाती हैं।
अति अकुलातीं मुरझातीं ना छिपातीं गात,
बात न सोहातीं बोलें अति अनखाती हैं॥
भूषन भनत सिंह साहि के सपूत सेवा,
'तेरी धाक सुनै' अरि-नारी बिललातीं हैं।
कोऊ करैं घाती, कोऊ रोतीं पीटि छाती,
घरैं तीनि बेर खातीं ते वै बीनि बेर खातीं हैं॥"

भूषण ने ब्रजभाषा में कविता की है, जैसे कि उस समय के प्रायः सभी कवियों ने की थी। युद्धों का वर्णन करते समय इन्होंने वर्णों को द्वित्व करने की परिपाटी का निर्वाह किया है, जिससे ओज गुण की मात्रा विशेष होगई है। इसके अतिरिक्त इनकी रचनाओं में बुंदेलखण्डी बोली के शब्द भी पर्याप्त संख्या में मिलते हैं। उस समय तक मुसलमानों का अधिक सम्पर्क और प्रभाव होजाने के कारण इनकी रचना फारसी के शब्दों से मुक्त नहीं रह सकी, पर भूषण ने विदेशी शब्दों को अपनी भाषा का जामा पहनाकर अन्तर्भूत किया है। आवश्यकतानुसार ये शब्दों को विकृत करने में भी नहीं चूके हैं।

इनकी कविता में ओज और प्रसाद गुण की प्रधानता है। अनुप्रासों की छटा सर्वत्र मिलती है, पर उनके कारण कविता कोमल और दुरूह नहीं होने पाई है।

भूषण

शिवाजी की दान—शीलता

सवैया

साहि तनै सरजा तव द्वार प्रतिच्छन दान की दुंदुभी बाजै।
भूषन भिच्छुक भीरन को अति भोजहु तें बढ़ि मौजनि साजै॥
राजन को गन, राजन! को गनै? साहिन मैं न इती छवि छाजै।
आजु गरीब नेवाज मही पर तो सो तुहीं सिवराज बिराजै॥१॥

(कवित्त)

तुम सिवराज ब्रजराज अवतार आज तुम ही जगत काज पोषत
भरत हौ॥
तुम्हें छाँड़ि यातें काहि बिनती सुनाऊँ मैं तुम्हारे गुन गाऊँ तुम ढीले
क्यों परत हौ॥
भूषन भनत वहि कुल में नयो गुनाह,
नाहक समुझि यह चित में धरत हौ।
और बाँभनन देखि करत सुदामा सुधि,
मोहि देखि सुधि काहे भृगु की करत हौ॥२॥
मंगल मनोरथ के प्रथमहि दाता तोहि।
कामधेनु, कामतरु सो गनाइयतु है।
याते तेरे गुन सब गाय को सकत कवि,
बुद्धि अनुसार कछु तऊ गाइयतु है।
भूषन भनत साहितनै सिवराज निज,
बखत बढ़ाय करि तुम्हें ध्याइयतु है।
दीनता को डारि औ अधीनता बिडारि दीह,
दारिद को मारि तेरे द्वार आइयतु है॥३॥

देव हुरी गन गीत सुने बिनु देत कवी जन गीत सुनाये।
भूषन आवत भूप न आन, जहान खुमान की कीरति गाये।
मंगन को सुख पाल घने पै निहाल करै सिवराज रिझाये।
आन ऋतै बरस सरसै उमड़ै नदियाँ ऋतु पावस पाये।४।

को कविराज विभूषन होते बिना कवि साहितनै को फझाये ?
को कविराज सभाजित होत सभा सरजा के बिना गुन गाये ?
को कविराज दुवालन आवत भौंसिला पे मन में बिनु भाये ?
को कविराज चढै गज-बाजि सिवाजीकी मौज मही बिनु पाये?।।५।।

जाहिर जहान जाके धनद समान पेखि—
ऋतु पासवान यों खुमान चित चाय है।
भूषन भनत देखे भूख न रहत सब,
आप ही सों जात दुख-दारिद बिलाय है।
खीझे ते खलक माँहि खल भल डारत है,
रीझे ते पलक माँहि कीन्हे रंक राय है।
जंग जुरि अरिन के अंग को अनंग की बो,
दीनो सिव साहब को सहज सुभाय है।।६।।

काहू पै जात न भूषन जे गढ पाल की मौज निहाल रहे हैं।
आवत हैं जु गुनी जन दच्छिन भौंसिला के गुन गीत लहे हैं।
राजन राव सबै उमराव खुमान की धाक धुके यों कहे हैं।
संक नही, सरजा सिवराज सों आज दुनी में गुनी निरभे हैं।।७।।

पीरी-पीरी हुन्ने तुम देत हौ मँगाय हमैं,
सुबरन हम सौं परखि करि लेत हौ।
एक पल ही में लाख रूपन सों लेत लोग,
तुम राजा ह्वै के लाख दीबे को सचेत हौ।

भूषन भनत महाराज सिवराज बड़े,
दानी दुनी ऊपर कहाए केहि हेत हौ।
रीझि हँसि हाथी हमैं सब कोऊ देत कहा,
रीझि हँसि हाथी एक तुम ह्वै देत हौ॥८॥

साहि तनै सिव! तेरो सुनत पुनीत नाम,
धाम धाम सब ही को पातक कटतु है।
तेरो जस काज आज सरजा निहारि कवि
मन भोज विक्रम कथा ते उचटतु है।

भूषन भनत तेरो दान संकलप जल,
अचरज सकल मही में लपटतु है।
और नदी-नदन तें कोकनद होत तेरो,
कर-कोकनद नदी-नद प्रगटतु है॥९॥

दै दस पाँच रुपैयन को जग कोऊ नरेस उदार कहायो।
कोटिन दान सिवा सरजा के सिपाहिन साहिन को बिचलायो॥
भूषन कोउ गरीबन सों भिरि भीमहुं ते बलवन्त कहायो।
दौलति इन्द्र समान बढ़ी पै खुमान के नेकु गुमान न आयो॥१०॥

साहि तनै सरजा की कीरति सों चारों ओर,
चाँदनी बितान छिति छोर छाइयतु है।
भूषन भनत ऐसो भूप भौंसिला है जाको,
द्वार भिच्छुकन सों सदाई भाइयतु है।

महादानि सिवाजी खुमान या जहान पर,
दान के प्रमान जाके यों गुनाइयतु है।
रजत की हौस किये हेम पाइयतु जासों,
हयन की हौस किए हाथी पाइयतु है ॥११॥

सहज सलील सील जलद से नील-डील,
पव्वय के पील देत नहिं अकुलात है।
भूषन भनत महाराज सिवराज देत,
कंचन को ढेर जो सुमेरु सो लखात है।

सरजा सवाई कासों करि कविताई तव,
हाथ की बड़ाई को बखान करि जात है।
जाको जस टेक सातो दीप नव खंड महि,
मंडल की कहा ब्रह्मंड ना समात है ॥१२॥

साहि तनै सरजा समरत्य करी करनी धरनी पर नीकी।
भूलिगे भोज से बिक्रम से औ भई बलि बेनु की कीरति फीकी॥
भूषन भिच्छुक भूप भए भलि भीख लै केवल भौंसिला ही की।
नै गुरू रीझि धनेश करै, लखि ऐसिहि रीति सदा सिवजी की॥१३॥

औरन के जन चाहे कहा अरु चाहे कहा नहिं होत चहा है।
औरन के अनरीझे कहा अरु रीझे कहा न मिटावत हा है॥
भूषन श्री शिवराज हि माँगए एक दुनी विच दानि महा है।
मंगन औरन के दरबार गए तो कहा न गए तो कहा है ?॥१४॥

जाहिर जहान सुनि दान के बखान आजु,
महादानि साहि तनै गरीब नेवाज के।
भूषन जवाहिर जलूस जरबाफ जोति,
देखि-देखि सरजा की सुकवि समाज के।
तप करि-करि कमलापति सों माँगत यों,
लोग सब करि मनोरथ ऐसे साज के।
बैपारी जहाज के न राजा भारी राज के,
भिखारी हमैं कीजै महाराज सिवराज के॥१५॥

यों सिर पै छहरावत छार हैं जाते उठे असमान बगूरे।
भूषन भूधर ऊपर कै जिनके धुनि धक्कन यों बल रूरे॥
ते सरजा सिवराज दिए कविराजन को गजराज गरूरे।
सुंडन सों पहिले जिन सोखि कै फेरि महा मद सों नद पूरे॥१६॥

द्वारन मतंग दीसैं आँगन तुरंग हीसैं,
बन्दीजन वारन असीसैं जसरत हैं।
भूषन बखानैं जरबाफ के सम्याने ताने,
झालरन मोतिन के झुण्ड झलरत हैं।

महाराज सिवा के नेवाजे कविराज ऐसे,
साजि के समाज तेहि ठौर विहरत हैं।
लाल करैं प्रात तहाँ नील मनि करैं रात,
याही भाँति सरजा की चर्चा करत हैं॥१७॥

साहि तने सिवराज ऐसे देत गजराज,
जिन्हैं पाय होत कविराज वे फिकिरि हैं।
भूलत झलमलात झूलैं जरवाफन की,
जकरे जंजीर जोर करत किरिरि हैं।
भूषन भँवर भननात घननात घंट,
पग झननात मनो घन रहे घिरि हैं।
जिनकी गरज सुने दिग्गज बे आब होत,
मद ही के आब गड़काब होत गिरि हैं॥१८॥

ऐसे बाजिराज देत महाराज सिवराज,
भूषन जे बाज की समाजैं निदरत हैं।
पौन पाय हीन, हग घूँघट में लीन,
मीन जल में बिलीन क्यों बराबरी करत हैं?
सबतें चलाक, चित तेऊ कुलि आलम के,
रहैं उर अन्तर में धीर न धरत है।
जिन चढ़ि आगे को चलाइयतु तीर; तीर
एक भरि तऊ तीर पीछे ही परत है॥१९॥

शिवा—शौर्य

जेते हैं पहार भुव मांहि पारावर तिन,
सुनि के अपार कृपा गहे सुख फैल हैं।
भूषन भनत साहि तनै सरजा के पास,
आइबे को चढ़ी उर हौं सनि की पैल है।
किरपान-वज्र सों विपच्छ करिबे के डर,
आनि के कितेक आये सरन की गैल है।
मघवा मही में तेजवान सिवराज बीर,
कोट करि सकल सपच्छ किये सैल हैं ॥२०॥

चमकती चपला न, फेरत फिरंगें भट,
इन्द्र को न चाप रूप बैरख समाज को।
धाये धुरवा न छाय धूरि के पटल मेघ,
गाजिबो न बाजिबो है दुन्दुभी दराज को।
भौंसिला के डरन डरानी रिपुरानी कहैं,
पिय भेजो, देखि उठो पावस के साज को।
घन की घटा न, गज घटनि सनाह साज,
भूषन भनत आयो सैन सिवराज को ॥२१॥

दुरजन दार भजि-भजि बेसम्हार चढ़ीं,
उत्तर पहार डरि सिवजी नरिन्द तें।
भूषन भनत बिन भूषन बसन, साधे,
भूखन पियासन हैं नाहन को निन्दवे।

बालक अयाने बाट पोच ही बिलाने कुम्हि,
लाने मुख कोमल अमल अरबिन्द ते।
इग जल कज्जल कलित बढ्यो कढ्यो मानो,
दूजो सोत तरनि तनू गा को कलिन्द ते ॥२२॥

आये दरबार बिललाने छरीदार देखि,
जापता करत हारे नेक हू न मनके।
भूषन भनत मौसिला के आय आगे ठाढे।
बाजे भए उमराव तुजुक करन के;
साहि रह्यो जकि, सिव साहि रह्यो तकि,
और चाहि रह्यो चकि बने ब्यौंत अनबन के।
ग्रीषम के भानु सा खुमानु को प्रताप देखि,
तारे सम तारे गए मूंदि तुरकन के ॥२३॥

चद्दत अपार तव दुंदुभि धुकार साथ,
लंघे पारावार वालवृन्द रिपु गन के।
तेरे चतुरंग के तुरंगन के रंगे रज,
साथ ही उड़ात रज पुंज है परन के।
दच्छिन के नाथ सिवराज ! तेरे हाथ चढ़ै,
धनुष्य के साथ गढ कोट दुरजन के।
भूषण असीसें तोहि करत कसीसें पुनि,
बानन के साथ छूटे प्रान तुरकान के ॥२४॥

अटल रहे हैं दि' अंतन के भूप धरि,
रैयति को रूप निज देस पेस करि कै।

राना रह्यो अटल बहाना करि चाकरी को,
बाना तजि भूषन भनत गुन भरि कै।
हाड़ा रायठौर, कछवाह, गौर और रहे,
अटल चकत्ता को चमाऊ धरि डर कै।
अटल सिवाजी रह्यो दिल्ली को निदरि धीर,
धरि ऐंड धरि तेग धरि गढ़ धरि कै ॥२४॥

ता दिन अखिल खल भलैं खल खलक मैं,
जा दिन सिवाजी गाजी नेक करखत हैं।
सुनत नगारन अगार तजि अरिन की,
दारगन भाजत न बार परखत हैं।
छूटे बार बार छूटे बारन ते लाल देखि,
भूषन सुकवि बरनत हरखत हैं।
क्यों न उतपात होंहि बैरिन के झुंडन मैं,
कारे घन उमड़ि अंगारे बरसत हैं ॥२६।

अगर के धूप-धूम उठत जहाँई तहाँ,
उठत बगूरे अब अति ही अमाप हैं।
जहाँई कलावंत अलापैं मधुर स्वर,
तहाँई भूत प्रेत अब करत विलाप हैं।
भूषन सिवाजी सरजा के बैर बैरिन के,
डेरन में परे मानों काहू के सराप हैं।
बाजत हे जिन महलन में मृदंग तहाँ,
गाजत मतंग सिंह बाघ दीह दाप हैं ॥२७॥

साहि तनै सरजा सिवा के सन मुख आय,
कोऊ बचि जाय न गनीम मुख-बल में।
भूषन भनत भौंसिला की दिल-दौर सुनि,
धाक ही मरत म्लेच्छ औरंग के दिल में।
राती दिन रोवत रहत यवनी हैं सोक,
परोई रहत दिली आगरे हलचल में।
कज्जल कलित अँसुवान के उमंग संग,
दूनों होत रोज रंग यमुना के जल में ॥२८॥

छप्पय

मुंड कटत कहुँ रुण्ड नटत कहुँ सुण्ड पटत घन।
गिद्ध लसत कहुँ सिद्ध हँसत सुख वृद्धि रसत मन॥
भूत फिरत करि बूत भिरत सुर दूत विरत तँह।
चंडि नचत गन मंडि रचत धुनि डण्डि मचत जँह।
इमि ठानि घोर घमसान अति भूषन तेज कियो अटल।
सिवराजि साहि सुव खग्ग बल दलि अडोल बहलोल दल ॥२६॥

साजि चतुरंग वीर रंग में तुरंग चढ़ि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
भूषन भनत नाद बिहद नगारन के,
नदी नद मद गब्बरन के रलत हैं।
ऐल-फैल, खैल-भैल खलक में गैल गैल,
गजन की ठेल पेल सैल उसलत हैं।

तारा सो तरनि-धूरि धारा में लगत, जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है ॥३०॥
प्रेतिनि पिसाचरु निसाचर निसाचरिहु,
मिलि मिलि आपुस में गावत बधाई है।
भैरों भूत प्रेत भूरि भूधर भयंकर से,
जुत्थ-जुत्थ जोगिनि जमाति जुरि आई है।
किलकि किलकि के कुतूहल करति काली,
डिम डिम डमरू दिगम्बर बजाई है।
सिवा पूछैं सिव सों समाज आजु कहाँ चली,
काहू पै सिवा नरेस भृकुटी चढ़ाई है ॥३१॥

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग,
ताहि खरो कियो जाय जारन के नियरे।
जानि गैर मिसिल गुसीले गुसा धरि उर,
कीन्हों ना सलाम न बचन बोले सियरे।
भूषन भनत महावीर बलकन लाग्यो,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे।
तमकते लाल मुख सिवा को निरखि भए,
स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे ॥३२॥

छूटत कमान और तीर गोली बानन के,
मुसकिल होत मुरचान हू की ओट में।
ताही समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो,
दावा बाँधि परो हल्ला बीर भट कोट में।

भूषन भनत तेरी हिम्मति कहाँ लौं कहौं,
किम्मति इहाँ लगि है जाकी भट झोट मैं।
ताव दै दै मूँछन कँगूरन पै पाँव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदे परे कोट मैं ॥२३॥

गरुड़ को दावा सदा नाग के समूह पर,
दाव नाग जूह पर सिंह सिर ताज को।
दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर,
पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को।
भूषन अखंड नव खण्ड महि मंडल मैं,
तम पर दावा रवि किरन समाज को।
पूरब पछाँह देस दच्छिन ते उत्तर लौं,
जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को ॥२४॥

जिन फन फुलकार उड़त पहार भार,
कूरम कठिन जनु कमल बिदलिगो।
विष जाल ज्वालामुखी लव लीन होत जिन,
झारन चिकारि मद दिग्गज उगलिगो।
कीन्हों जेहि पान पय पान सो जहान कुल,
कोलहू उछलि जलसिन्धु खलभलिगो।
खग्ग खगराज महाराज सिवराज जू को,
अखिल भुजंग मुगलद्दल निगलिगो ॥२५॥

घनानन्द

जीवन परिचय—इनका जन्म संवत् १७४६ के लगभग हुआ था। ये जाति के कायस्थ और दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के मीर मुन्शी थे। अपनी योग्यता के बल पर ये दफ्तर के साधारण लेखक की हैसियत से इस उच्च पद पर पहुँचे थे। कहते हैं कि ये फारसी भाषा में अबुलफज़ल के शिष्य थे और फारसी भाषा में भी कविता करते थे।

लौकिक प्रेम से प्रारम्भ करके किस प्रकार भक्त लोग अलौकिक प्रेम की ओर अग्रसर होते हैं, इसके अनेक उदाहरण भारतीय इतिहास में मिलते हैं। घनानंदजी के संबंध में भी ऐसा ही कहा जाता है। कहते हैं कि ये सुजान नाम की एक वेश्या से प्रेम करते थे। कुछ दरबारी घनानंदजी की इस बात को लेकर उन्हें राज दरबार में नीचा दिखाने का अवसर ढूँढ़ा करते थे। एक दिन कुचक्रियों ने बादशाह से कहा कि मीर मुन्शी साहब गाते बहुत अच्छा हैं। बादशाह से इन्होंने बहुत टालमटोल किया। इस पर लोगों ने कहा कि ये इस तरह नहीं गायेंगे, सुजान वेश्या यदि कहेगी, तो गा देंगे। ऐसा ही हुआ। घनानंदजी ने बादशाह की ओर पीठ तथा सुजान की ओर मुँह करके ऐसा सुन्दर गाया कि बादशाह मुग्ध होगया, किन्तु उनकी धृष्टता पर क्रुद्ध होकर इन्हें शहर से निकाल दिया। चलते समय इन्होंने सुजान से भी चलने को कहा, पर वह तैयार नहीं हुई। इस पर घनानंद को वैराग्य उत्पन्न हो गया और लौकिक प्रेम की धारा ईश्वरोन्मुख होगई। ये वृन्दावन जाकर निम्बार्क सम्प्रदाय के साधु होगये। परंतु अपनी कविता में इन्होंने 'सुजान' को नहीं छोड़ा। सुजान शब्द अब वेश्या का नाम न रह कर उनके आराध्य कृष्ण का प्रतीक होगया।

नादिरशाह के आक्रमण के समय यवनों द्वारा इनकी हत्या हुई। कहते हैं कि कुचक्रियों ने वृन्दावन में भी इनका पीछा न छोड़ा। जब

नादिरशाह के सिपाही लूटते-लूटते वृन्दावन आये तो लोगों ने उन्हें बताया कि यहाँ बादशाह का एक मीर मुन्शी रहता है, उसके पास बहुत सा धन है। सिपाही 'ज़र-ज़र-ज़र' कहते घनानंदजी की ओर दौड़े, परंतु घनानंदजी ने 'रज-रज-रज' कहकर तीन मुट्ठी धूल उनकी ओर फेंकी। सिपाहियों ने क्रोधावेश में घनानंदजी को समाप्त कर दिया।

ग्रन्थ —घनानंदजी के इतने ग्रन्थों का पता लगता है—सुजान-सागर, विरह-लीला, कोकसार, रस केलिवल्ली और कृपाकाण्ड। कृष्णभक्ति संबंधी एक विशद ग्रन्थ भी इनका मिलता है, जिसमें कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। इनकी 'विरह-लीला' व्रजभाषा में पर फारसी के छंदों में है।

काव्य-विशेषता —ये कृष्ण भगवान के भक्त थे। सुजानसागर की रचना यद्यपि इन्होंने भक्ति के आवेश में ही की है, किन्तु उसमें भक्ति के तत्व उतने नहीं हैं, जितने शृङ्गार के। अतः घनानंदजी को वास्तव में शृङ्गार का ही कवि मानना चाहिए। इनकी कविता में प्रेम की पीड़ा की व्यञ्जना बहुत ही हृदयस्पर्शी हुई है। प्रेम मार्ग के पथिक ही इनकी कविता का सच्चा रसास्वाद कर सकते हैं। इन्होंने स्वयं कहा है—

"समुझै कविता घन आनंद की हिय, आँखिन नेह की पीर तकी।"

इनकी कविता में भाव पक्ष की प्रधानता है। आलंबन और उद्दीपनों का वर्णन इनमें कम मिलता है। हृदय पक्ष की प्रधानता होने के कारण इनकी कविता में प्रेम के ऊपरी आडम्बरों का वर्णन कम मिलता है। प्रेम दशा की व्यञ्जना इनकी कविता का प्रधान गुण है। इन्होंने प्रेम की गूढ़ अंतर्दशा का उद्घाटन अत्यन्त सुन्दर और उत्कृष्ट किया है। इनकी रचना में जगह-जगह विरोधाभास के द्वारा प्रेम की अनिर्वचनीयता का आभास मिलता है।

यद्यपि घनानंदजी ने शृङ्गार के संयोग पक्ष को भी लिया है, पर वियोग की अंतर्दशाओं की ओर ही इनकी दृष्टि अधिक रही है। वियोग में भी

बाह्यगी ताप और तड़पन आदि का वर्णन न होकर हृदय की वेदना के ही चित्र अधिक हैं। पवन-दूत से विरही का यह निवेदन कितना मर्मस्पर्शी है:—

"एरे वीर पौन तेरो सबे ओर गौन, वारी
तो सो और कौन मनै ढरकौ ही बानि दै।
जगत के प्रान ओछे बड़े सों समान घन—
आनंद निधान सुख दान दुखियानि दै॥
जान उजियारे गुन भारे अति मोही प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे पीठि पहिचानि दै।
विरह व्यथा की भूरि आँखिन मैं राखौं पूरि,
धूरि तिन पायनि की हा हा नैकु आनि दै॥"

घनानंदजी का भाषा पर अचूक अधिकार था। भाषा इनकी वशवर्तिनी सी होगई थी, उसे ये जिधर जिस भाव में चाहते, ढाल लेते थे। इनकी रचना में आकर भाषा को प्रौढ़ता प्राप्त हुई। बँधी हुई प्रणाली से हटकर उसने आवश्यकतानुसार नया मार्ग अपनाया। घनानंदजी ने भाषा की अर्जित शक्ति से ही काम नहीं लिया, वरन् उसे अपनी अनुपम प्रतिभा के द्वारा शक्ति प्रदान की। अपने भावों को सुन्दर रूप से व्यक्त करने के लिए इन्होंने भाषा का बेधड़क प्रयोग किया। सबसे प्रधान और नई बात, जो घनानंदजी की भाषा में है, वह है उसकी लाक्षणिकता। लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोग वैचित्र्य की अनुपम छटा इनकी रचना में मिलती है। कहीं-कहीं स्निग्ध, सरल और प्रवाहमयी भाषा का रूप भी दृष्टिगोचर होता है।

घनानंदजी अलंकारों के फेर में नहीं पड़े। विरोधाभास भावों की उत्कटता और प्रेम की अनिर्वचनीयता का आभास कराने के लिए प्रयुक्त हुआ है। अन्य अलंकार जो स्वभावतः आगये, आगये हैं।

इन्होंने शुद्ध ब्रजभाषा में कविता की है। भाषा की शुद्धता और माधुर्य की दृष्टि से रसखान के अतिरिक्त अन्य कवि इनके समकक्ष होने का दावा नहीं कर सकता।

घनानन्द

सवैया

नेही महा ब्रज भाषा प्रवीन औ सुन्दरताई के भेद को जानै।
जोग वियोग की रीति मैं कोविद भावना भेद स्वरूप को ठानै।
चाह के रंग में भीज्यो हियो बिछुरें मिलें प्रीतम सांति न मानै।
भाषा प्रवीन सुछन्द सदा रहै सो घन जी के कवित्त बखानै ॥१॥

प्रेम सदा अति ऊँचो लहै सु कहै इहि भाँति की बात छकी।
सुनि कैं सब के मन लालच दौरे पै बौरे लखें सब बुद्धि चकी।
जग की कविताई के धोखे रहैं ह्याँ प्रवीनन की मति जाति जकी।
समुझै कविता घन आँनद की हिय आँखिन नेह कि पीर तकी ॥२॥

प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान कहौ,
कैसे रहैं प्रान जो अनखि अरसाय हौ।
तुम हो उदार दीन-हीन आनि पर्‌यो द्वार,
सुनिए पुकार याहि कौ लौं तरसाय हौ।
चातक है रावरो अनोखो मोहिं आवरो सु-
जान रूप बावरो बदन दरसाय हौ,
विरह नसाय दया हिय में बसाय आय,
हाय कब आँनद को घन बरसाय हौ ॥३॥

पहिले अपनाय सुजान सनेह सों क्यों फिरि नेह को तोरिए जू।
निरधार अधार दै धार मँझार दई गहि बाँह न बोरिए जू॥
'घन आनन्द' आपने चातक कों गुन बाँधि लै मोह न छोरिए जू।
रस प्याय, कै ज्याय बढ़ाय कै आस बिसास में यों बिष घोरिए जू॥४॥

आसा गुन बाँधि कै भरोसो-सिल छाती धरि,
पूरे पन सिंधु मैं न बूड़त सकाय हौं।
दुख दव हिय जारि अन्तर उदेग आँच,
निरन्तर रोम-रोम त्रासनि तचाय हौं।
लाख लाख भाँतिन की दुसह दसानि जानि,
साहस सहारि सिर आरे लौं चलाय हौं।
ऐसे, घन आनन्द, गही है टेक मन माँहि,
एरे निरदई तोहि दया उपजाय हौं॥५॥

अधिक बधिक तें सुजान रीति रावरी है,
कपट चुगो दै फिरि निपट करौ बुरी
गुननि पकरि लै निपाख करि छोरि देहु,
मरहि न जीयें महा बिषम दया छुरी।
हौं न जानौं कौन धौं है या मैं सिद्धि स्वारथ की,
लखी क्यों परति प्यारे अन्तर कथा दुरी।
कैसे आसा द्रुम पै बसेरो लहै प्रान-खग,
बनक निकाई घन आनन्द नई जुरी॥६॥

ऐरे बीर पौन तेरो सबै ओर गौन बारी,
तोसो और कौन मनै ढर कौंही बानि दै।
जगत के प्रान ओछे बड़े कों समान घन-
आनन्द निधान सुख दान दुखियानि दै।

जान उजियारे गुन भारे अति मोही प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे पीठि पहिचानि दै।
बिरह-बिथा की मूरि आँखिन मैं राखौं पूरि,
धूरि तिन पायन की हा हा नेकु आनि दै।।७।।

कारी कूर कोकिल-कहाँ को बैर काढ़ति री,
कूकि कूकि अबही करेंजो किन कोरि लै।
पैंड परे पापी ये कलापी निस द्यौस ज्यों हीं,
चातक घातक त्यों ही तुहूँ कान फोरि लै।

आनँद के घन प्रान जीवन सुजान बिना,
जानि कै अकेली सब घेरौ दल जोरि लै।
जौ लौं करैं आवन बिनोद बरसावन वे,
तौ लौं रे डरारे बजमारे घन घोरि लै।।८।।

जीव की बात जनाइये क्यों करि जानकहाय अजाननि आगो।।
तीरनि मारि कै पीर न पावत एक सो मानत रोइबो रागो।।
ऐसी बनी घनआनँद आनि जू आन न सूझत सो किन त्यागो।।
प्रान मरैंगे भरैंगे बिथा पै अमोही सों काहू को मोहु न लागो।।९।।

तोहि सब गावै एक तोहि को बतावैं वेद,
पावैं फल ध्यावैं जैसे भावनानि भरि रे।
जल-थल व्यापी सदा अन्तर जामी उदार,
जगत में नाम जान राम रह्यो परि रे।
एतौ गुन पाय हाय हाय घन आनन्द यों,
कैधौं तोहि दई यो निरगुन ही करि रे।
जरौं बिरहागिनी मैं करौं हौं पुकार कासों,
दई गयो तू हूँ निरदई ओर ढरि रे ॥१०॥

परकारज देह को धारे फिरौ पर जन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ सब ही बिधि सज्जनता सरसौ।
'घन आनंद' जीवन दायक हौ, कछु मेरियो पीर हिएँ परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवान को लै बरसौ ॥११॥

जिनको नित नीकें निहारत ही तिनको अँखियाँ अब रोवति हैं।
पल पाँवड़े पायन चायन सों अँसुवानि के धारनि धोवति हैं।
घन आनँद जान सजीवन कों, सपने बिन पायेई खोवति हैं।
न खुली मुँदी जानि परैं कछु ये दुख हाई जगे पर सोवति हैं ॥१२॥

जा हित मात को नाम जसोदा सुबंस को चन्द कला कुल धारी।
सोभा समूह मई घन आनद मूरति रंग अनंग जिवारी।
जान महा सहजै रिझवार उदार बिलास में रास बिहारी।
मेरो मनोरथ हू बहिए अरु है मो मनोरथ पूरन कारी ॥१३॥

तुम ही गति हौ, तुमही मति हौ, तुम ही पति हौ अति दीनन की।
निज प्रीति करौ गुन हीननिहाँ यह रीति सुजान प्रवीनन की॥
बरसौ 'घन आनँद' जीवन को सरसौ सुधि चातक छीनन की।
मृदु तौ चित के पन प इत के निधि हौ हित के रुचि मीनन की॥१४॥

वे ई कुंज पुंज जिन तेरे वन बादतु हौ,
तिन छाँह आएँ अघ गहन सो गहिगो।
सरित सुजान चैन बीचि तन सों सींची जिन,
वही यमुना पैं हेली यह पानी बहिगो।
बढ़े सुख श्रम स्वेद समै को सहाय पौन,
नाहिं छिपे देह देया महा दुख दहिगो।
वे ही घन आनँद जू जीवन को देते तिनही,
को नाम मारिनि के मारिवे को रहिगो॥१५॥

अमल अपूरब उजागर अखंड नित,
जाहि चाहि चंदहिं चिताइवो कलंक है।
वारनि प्रकासे मित्र मंडल में मँडन है,
बन घन राजै रस नायक निसंक है।
आनँद अमृत कंद वंदनीय प्रानति को,
सुखमा संपत्ति हेरे काम कौन रंक है।
चाह तें चकोरनि कों चौंपनि सों लखि लेत,
कृपा चन्द्रिका में नन्द नन्दन मयंक है॥ ६॥

क्यों हठ कै सठ साधनु सोधनु होत कहा मन यों तरसे तें।
हाथ चढ़े जिहि स्याम सुजान कहूँ लिहि पाइन पै परसे तें।
नीर सु मानस हूँ रस रासि बिराजत नै कछु जा सरसें तें।
ऊसर हूँ सर होत लखें घन आनँद' रूप कृपा बरसे तें ॥१७॥

साधन पुंज परे अन्लेखे पै मैं अपने मन ए कौन लेख्यो।
जे जिहि के अर्के ‍ मैं कबहूँ बिन सोच कछु न बिसेख्यो।
वातें सबै तजि स्याम सुजान सों साहस औरे हिएँ अवरेख्यो।
प्रान पपीहन को 'घन आनँद'पीव रसीली कृपा करि देख्यो ॥१८॥

आय जो बाय तो धूरि सबै सुरजीवन मूरि सम्हारत क्यों नहिं?
छाँडि सहागति तोहि कहा तरि बैठें बनेगी बिचारत क्यों नहिं?
नैननि संग फिरै भटक्यो पलै मूँदि सरूप निहारत क्यों नहिं?
स्याम सुजान कृपा घन आनँद प्रान पपीहन पारत क्यों नहिं ॥१९॥

हरि कै हथ में हिय में सुख से महिमा फिरि और कहा कहियै।
दरसे निन नैननि बैननि हूँ सुखखानि सों रंग महा लहियै।
घन आनँद प्रान पपीहनि पै रस प्यावनि ह्याव नि है बहियै।
परि कोऊ अनेक उपाय मरौ हमें जीवनि एक कृपा चहियै।२०॥

काहे कौं सोचि मैरे हियरा परी तोहि कहा विधि बातनि की है।
हैं 'घन आनँद' स्याम सुजान सम्हारि तू पातक क्यों मुरझी है।
ऐसे रसामृत पुंजहि पाइकें को हठ साधन छीलत छी है।
जाकी कृपा नित हाथ रही दुख ताप तें पार बचाव ही की है ॥२१॥

कोउ कृपा बल दुबरो है करि क्यों नहिं साधन के सब साधौ।
लीन के लोमन भ्रम्न मनौ किन कोउ समाधिहिं ऐंचि अराधौ।
मेरे कृपा 'घन आनंद' है रस भीजें सदा जिहिं राधिका माधौ।
वा बिन ते श्रम सूल से हैं भ्रम मूल जहाँ सुख एक न आधौ॥२२॥

साधन जितिकले असाधन के नेग लगौ,
साधन को महा मत से'र नहि ताहि तू।
प्रेम सों रतन जाते पाइहै सहज ही मैं,
यही नाम रुप सु अनूप गुन चाहि तू।
राधिका चरन नख चंद त्यों चकोर के से,
चाहतु अमंद यों तरंगिनि समाहि तू।
मोहति बिहाय हू चढ़ाइ लै है सोइ हा हा,
कृष्ण कृपा सिंधु मेरे मन अवगाहि तू॥२३॥

रसिक रंगीले भली भाँतिनि छबीले घन,
आनँद रचीले मेरे महा सुख सार हैं।
कृपा धन धाम स्याम सुंदर सुजान मोद,-
मूरति सनेही बिना बूझैं रिझवार हैं।
चारु आल बाल औ अचाह के कलप तरु,
कोरति मयंक प्रेम सागर अपार हैं।
नित हित संगी मन मोहन त्रिभंगी मेरे,
प्राननि अधार नंद नंदन उदार हैं॥२४॥

बहुत दिनानि की अवधि आस पास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान कौं ।
कहि कहि आवन संदेसो मन भावन को,
गहि गहि राखत हो दै दै सनमान कौं ।
झूंठी बतियान के पत्यान ते उदास ह्वै के,
अब न घिरत घन आनँद निदान कौं ।
अधर लगे हैं आनि करि के पयान प्रान,
चाहत चलन ये संदेसो लै सुजान कौं ॥२४॥

सूर्यमल

ब्रजभाषा की सुरीली तान के बीच डिंगल का शंखनाद करने वाले कवि राजा सूर्यमल को हिन्दी साहित्य के इतिहासकार चाहे अपना न मानें, इतिहासों में उनका नामोल्लेख करना भी उचित न समझें और उनके साहित्यिक महत्व को आँकने में जाने या अनजाने असमर्थ रहें, पर सूर्यमल हिन्दी के थे और हिन्दी के रहेंगे। आदिकाल के डिंगल या राजस्थानी के रासो-कारों के ग्रन्थों का अन्वेषण और अनुशीलन करने के लिए आज के विद्वान् भरसक प्रयत्न करते हैं, परंतु कितने खेद की बात है कि आधुनिक काल से कुछ ही पूर्व के इस कवि के संबंध में उनकी खोज और अनुशीलन का द्वार बंद सा होजाता है। जो हो, इससे सूर्यमल की काव्य-गरिमा में किसी प्रकार की कमी नहीं आ सकती।

इनका जन्म चारणों की मिश्रण शाखा के एक प्रतिष्ठित कुल में संवत् १८७२ में बूँदी में हुआ था। इनके पिता का नाम चंडीदान था। ये बूँदी दरबार के प्रधान कवि थे। इन्होंने ६ विवाह किये थे, पर इनके कोई संतान नहीं हुई। अतः इन्होंने मुरारीदानजी को गोद ले लिया।

सूर्यमल बड़े विलासी थे। व्यवहार में बड़े रूखे थे। दिन-रात शराब के नशे में चूर रहते थे। यहाँ तक कि अपनी एक स्त्री की अंत्येष्टि-क्रिया में भी ये शराब पीकर गये थे। नशे में इनकी काव्य-स्फुरणा बड़ी बलवती होजाती थी। दोनों ओर बैठे हुए दो-दो लेखक भी इनकी वाणी से निःसृत कविता को लिपिबद्ध करने में असमर्थ होजाते थे। सहृदय कवि होने के साथ साथ ये उच्चकोटि के विद्वान् भी थे और संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, डिंगल आदि कई भाषाएँ जानते थे। ये इतिहास के भी अच्छे ज्ञाता थे। इनका देहान्त संवत् १९२० में हुआ।

सूर्यमल के लिखे हुए चार ग्रन्थ मिलते हैं—वंश भास्कर, बलवंत-विलास, छन्दोमयूख और वीर सतसई। इनके सिवा इनके फुटकर कवित्त सवैये भी मिलते हैं। वंश भास्कर इनकी सर्व श्रेष्ठ और सर्व प्रिय रचना है। इसका रचना-काल संवत् १८६७ है। इसमें बूँदी राज्य के साथ-साथ राजस्थान का इतिहास वर्णित है। यह बड़ा विशद ग्रन्थ है। इसमें सेनाओं की सजावट, युद्ध की भयंकरता, तलवारों की चमक, हाथी-घोड़ों के युद्ध आदि के वर्णन बहुत सजीव हैं। जिस समय सूर्यमल युद्ध का वर्णन करने लगते हैं, उस समय वे किसी बात को अधूरी नहीं छोड़ते। युद्ध संबंधी किसी भी विषय को अलग्नता से नहीं देखते। वीरों के जयनाद से लेकर मांस के लोभ से लाशों पर बैठे हुए गिद्धों तक का वर्णन उसमें एक सी भावुकता और एक से चमत्कार के साथ किया है। यथा—

"उमेद दिनेस रच्यो रन खेल। दुरयो सठ धुग्धुव दुग्ग दलेल॥
फबै असि खुप्परि खेपन फारि। बहै बनु सम्भुवतंति विदारि॥

× × ×

रहै कित गिद्धन को गन साथ। फहै कितहू रव ऐंचत हाथ॥
यहै कति मात पिता तिय बैन। गिरैं कति मोहित उज्झलि गैन॥"

वीर रस का जैसा भावानुरंजित और ओज पूर्ण वर्णन सूर्यमल ने किया है, वैसा अन्य कवियों ने नहीं। वीर रस के अन्य कवि तो 'वीर' के साथ-साथ रहकर उसी की यश-गाथा में अपनी कृतार्थता समझते हैं, पर सूर्यमल ने पति का युद्ध में भेजने वाली वीर-रमणी की मनोदशाओं का वर्णन भी बहुत ही स्वाभाविक किया है। वीर-बाला रणभूमि में गये हुए पति की चिन्ता में मग्न है, पर यह नहीं चाहती कि उसका पति भाग कर घर आवे। यह सुनना मिलने पर कि पति भागा हुआ घर की ओर आरहा है। उसके दुःख की सीमा नहीं रहता। वह कायर पति को देखकर कहती है—

"पूताँ रे बेटा थिया, घर में बधियो आल।
अब तो छोड़ो मागणो, वत लुभायो थाल॥"
"यो गहणो यो भेस अब, कीजे धारण कंत।
हूँ जोगण किण काम री, चूड़ा खरच मिटंत॥"

अपने पति के लिए तलवार की तेज़ धार करने के लिए वह 'सिकलीगरनी' को आदेश देती हुई कहती है—

"अणिधावण तो पीव पर, वारी वार अनेक।
रण भटवंता कंत रे, लगै न भाटक एक॥"

वीर माता अपने पुत्र को भूले में भुलाती हुई शिक्षा दे रही हैः—

"इला न देणी आपरी, हालरिया हुलराय।
पूत सिखावै पालणै, मरण बड़ाई माँय॥"

ऐसी वीर माताओं के पुत्र उत्पन्न होने ही किस प्रकार वीरता के कार्यों की ओर प्रवृत्ति रखने हैं, इसका कुछ आभास इस दोहे से मिलता है—

"हूँ बलिहारी राणियाँ, जुग सिखावण भाव।
नालो बाढ़णरी छुरी, भाटै जणियो साव॥"

वीर कन्यायें भी उत्पन्न होते ही जौहर की ज्वाला से आलिंगन करने को उद्यत रहती हैं—

"हूँ बलिहारी राणियाँ, साँचा गरभ सिलाय।
बाँचा हन्दे तापणैं, हरखे धी चितलाय॥"

सूर्यमल ने डिंगल और पिंगल दोनों भाषाओं का प्रयोग किया है। वंश भास्कर में चारणों की खिचड़ी भाषा का रूप मिलता है, जिसमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, ब्रजभाषा आदि कई भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है। वंश भास्कर की भाषा कठिन बहुत है। इन्होंने अपने गढ़े हुए शब्दों का प्रयोग भी स्वच्छता के साथ किया है। इसीलिए इनके ग्रन्थ साधारण योग्यता वाले के लिए कठिन होगये हैं।

सूर्यमल

दोहा

सहणी सबरी हूँ सखी, दो उर उलटी दाह।
दूध लजाणों पूत सम, वलय लजाणो नाह ॥१॥

जे खल भग्गा तो सखी, मोताहल सज थाल।
निज भग्गा तो नाह रो, साथ न सूनो टाल ॥२॥

हथलेवै ही मूठ किण, हाथ विलग्गा माय।
लाखाँ बाताँ हेकलो, चूड़ो मोन लजाय ॥३॥

बसती भीर निसंक भख, जंबुक राह म जाह।
पण धण रो किम पेलही, नयण विणट्ठा नाह ॥४॥

का पुचकारे धण कहै, जाण धणीरी जैत।
नौरा जण बाघा वियो, हूँ बलिहार कुमैत ॥५॥

सूत न दीजै ठाकुराँ पाथक माथे पाँव।
रास रहीजै हाथियाँ, तिया धरीजै चाव ॥६॥

थपि पाखर को पीव पर, वारो वार अनेक।
रण झाटकताँ कंत रे, लगै न झाटक एक ॥७॥

सापण ढोल सुणावणौ, देणौ सो सह दाद।
हरखौ रोती बीज धर, रजवट उलटो राद ॥८॥

आज घरे सासू कहै, हरख अचाणक काय।
बहू बलेवा हुलसै, पूत मरेवा जाय ॥९॥

देख सहेली मो धणी, अन को बाग उठाय ।
मद प्याला खिमि एक लो, फौजाँ पीवत जाय ॥१०॥

पग पाछा छाती धड़क, वालो पीळो वीह ।
नैण मिचै, साम्हो सुणे, कवण हकालै सीह ॥११॥

नावण आज न मॉंड पग, काले सुणीजे जंग ।
धारॉं लागी जे धणी, तो दीजै घण रंग ॥१२॥

ऊभी गोरख अवेलियै, पेलाँ रो दल सेर ।
पड़ियो धव सुणियो नहीं, लीधो धण नालेर ॥१३॥

हूँ पाछै आगै हुवे, आणी नाह घरेह ।
जे वाल्ही घण जीवहूँ, आगै मुझ करेह ॥ १४ ॥

कंत भला घर आविया, पहरीजै मो वेस ।
अब धण लागी चूड़ियाँ, भव दूजे भेटेस ॥१५॥

की घर आवे थें कियौ, हणिया बलती हाथ ।
धण धारे घणन नेहड़ै, लीधो वेग बुलाय ॥१६॥

पूताँ रे बेटा थिया, घर में वधियो जाळ ।
अब तो छोड़ो भागणों, कंत लुभायो काल ॥१७॥

यो गहणो यो वेस अब कीजै धारण कंत ।
हूँ जोगण किण कामरी, चूड़ा खरच मिटन्त ॥१८॥

कंत सुपेती देखताँ, अब की जीवण आस ।
मो थण रहणै हाथ हूँ, घाते मुरदें घास ॥१९॥

दरजण लाँबी अंगियां, आणीजै अब मूफ ।
तब ढोटे मोनूं दया, दूण सिवाई तूफ ॥२०॥

मणिहारी जारी सखी, अब न हवेली आव ।
पीव मुवा घर आविया, विधवाँ किसो बणाव ॥२१॥

गधंण फूकी रे गलब, मूँहा आगम मौण ।
वलण वढायो अतर धण, मुँहगो लेसी कौण ॥२२॥

हूँ बलिहारी राणियाँ, भ्रूण सिखावण भाव ।
नालो वाढणरो छुरी, भपटै जाणियो माव ॥२३॥

हूँ बलिहारी राणियाँ, सौंधा गरभ सिखाय ।
जाघाँ हूंदे तापणो, हरसै भी दग लाय ॥२४॥

कंत लखीजै दोहि कुल, नथी फिरंतो छांह ।
मुड़ियाँ मिलसी गींदवो, वले न धण री बाँह ॥२५॥

हेली को अचरज कहूँ, कंत करा बलिहार ।
घर में देखूँ दोय कर, रण में होय हजार ॥२६॥

मोला की हद आगयी, अंत न पड़है ऐण ।
बोजा दोण कुल बह, नीचा करसी नैण ॥२७॥

ढोल घरज सब भेळ घर, घर नालेर सुथाम ।
धावाँ कंत पधारिया, पाँवां हूँत प्रणाम ॥२८॥

रण खेती रजपूत री, बीर न भूलै बाळ ।
बारह बरसाँ लावरो, वहै बीर संभाळ ॥२९॥

अठे सुजस प्रभुता उठे, अवसर मरियाँ आय।
मरणो घर रे मांभियाँ, जम नरकां लेजाय ॥३०॥

पहिल मिले धण पूछियो, किण कीधा किण हाथ।
बीजल मांहे बोलियो, दूण हाकण भू आय ॥३१॥

ढोल सुणंता मंगली, मूँछां मूँह चढन्त।
चंवरी ही पहिचाणियो, कंवरी मरणो कंत ॥३२॥

ग्रीव न मोड़े देखणौं, करणा सत्र सिराह।
परणंता धण पेखियो, ओछी ऊमर नाह ॥३३॥

पेटी मौड़ छिपावयाँ, जाण घाव न जीव।
इली दिवसाँ पाहुणौं, पड़वे दीठो पीव ॥३४॥

वल खांचे जण जण वहै, कस बांधे करवाल।
परख मरदाँ अर कायराँ, ग्रह ग्रहियाँ त्रंवाल ॥३५॥

सीह न बाजौ ठाकुरां, दीन गुजारो दीह।
हाकल पाड़े हाथियाँ, सीमड बाजे सीह ॥३६॥

कायर री धण यूँ कहै, छाने कंत छिपाय।
सीव थिकें जिण देखड़े, साई सो न दिखाय ॥३७॥

नरा न ठाणो नारियाँ, ईश्रो सगत पह।
सूरां घर सूरी महल, कायर, कायर-गेह ॥३८॥

सखी नथी धव जीवतां, अरियाँ पायो चैन।
पलनां लोधो गोद में, तो मो मूँछ मुढैन ॥३९॥

इला न देणी आपणी, हालरिया हुलराय ।
पूत सिखावै पालणौ, मरण बड़ाई मॉय ॥४०॥

वैरी थाड़ै वाघड़ो, सदा सणंकै खाग ।
हेली कै दिन पाहुणों, ऊदा भाग सुहाग ॥४१॥

हूँ हेली अचरज करूँ, घर में बाघ समाय ।
हांको सुणतां हूलसे, मरणो कीघ न माय ॥४२॥

तन दुरंग और जोबतन, कढ़णो मरणो एक ।
जीव विणठांजे कदी, नाम रहीजे नेक ॥४३॥

जिण बन भूल न जावता, गैंद, गिवल, गिड़राज ।
तिण बन जंबुक ताखड़ा, ऊधम मंडै आज ॥४४।

परिशिष्ट १

कठिन शब्दों के अर्थ और टिप्पणियाँ

कबीर

दोहे—(१) नाइकौं=नायक, स्वामी (२) मीतु=मित्र (३) मूयैं=मरने से (४) ग्रिहे [गृह]=घर, साकत=शाक्त, शक्ति का उपासक, बापुरे=बेचारे (६) मुसि मुसि=चुरा चुरा कर। कीनी बारह बाट=व्यर्थ करदी, नष्ट भ्रष्ट करदी। (९) बेड़ा=नाव, हरुये हरुये=हल्के हल्के (१०) जिउ=ज्यों, केस=बाल, (१२) जन्त्र मंत्र=तारों का वाद्य, सारंगी, सितार आदि (१३) सानि=सोना (१६) बेउना=रैणार, भंगार=बाट (१८) खेह=धूल (१९) सरबग [सर्वाङ्ग]=पूर्णतया (२०) सीरा=ठंडा (२१) तिउ=उसी प्रकार, त्यों (२३) हूँ=अहंभाव, आपा=अभिमान, उतै=उधर, वहाँ। रत=रक्त (२५) कुबध=हिंसा, मतमतु=मतवाला (२६) लोइन [लोचन]=नेत्र, गउ=गये (२९) पिंगल=पंगु, लँगड़ा (३०) भव=संसार, कूलि=तट।

पद—(१) अनहद सबद=हठयोग के अनुसार वह नाद जिसका अनुभव योगियों को समाधि—अवस्था में अपने ब्रह्माण्ड में हुआ करता है, सुरति=ध्यान, परसहिं=स्पर्श करे।

(२) देवल=मन्दिर, तलास [तलाश]=खोज।

मलिक-मुहम्मद-जायसी

गोरा-बादल-युद्ध

(१) चंडोल=पालकी, सजोइल=अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित, न जाने भानु=सूर्य को भी पता नहीं था, ओहार=पालकी ढाँकने का परदा। पँवेग=पद्मावती, और को बेली=अन्य स्त्रियों की क्या बात, ओल=गिरवी, समनत, तुरि=घोड़ियाँ।

(२) सौंपना=देना रेन में, अगमना=आगे, पहले ऑंकोरा=घूस, रिश्वत, स्यों=साथ, खिल्ली=कुञ्जी, चारियों, पानी भए=नरम होगये, चाँद=पद्मावती, जावत=जितने, नराई=तारे, नखत तराई=नक्षत्र और तारे (दासियाँ और सखियाँ) कविलासु=राजमहल।

(३) ढूँढ़ि सो····· भरी=जो घड़ा खाली था ईश्वर ने फिर भरा, जोहारु=प्रणाम, जुगति=युक्ति, उपाय, टेकी बाग=लगाम सँभाली, गहन गरासा=ग्रहण लगा था। (४) गोहरि=पुकार कर, कटक=सेना, असूस=अनगिनती, छोपत=छिपता हुआ, गोद=गेंद, चौगान=गेंद खेलने का डंडा, जो मैदान गोइ लेइ जाऊँ=यदि युद्ध में विजय प्राप्त कर लूँ। (५) मीचु=मृत्यु, आउ भरी=आयु पूरी होगई, पूजी=पूरी होगई, समदि=विदा लेकर, पुरुष=योद्धा, मवि=अवसर, आव=चमक। (६) दहुँ=देखें, सोहिल=अगस्त्य तारा, बिलाहीं=जायेंगे, डुंगवै=टीला या बुर्ज, पाछे घालि डुंगवै राजा=राजा रत्नसेन को पहाड़ या बुर्ज के पीछे रखकर, जमसातर=यम का खाँड़ा, साँकरे=संकट में, निबाहौं=निस्तार करूँ, हेड़=हेड़ा, अहेरा।

सूरदास

बाललीला

(१) मल्हावै = झुलाती है, अधर = ओठ, दुहि अंतर = इसी बीच में,

(२) अपने रँग खेलत = अपनी धुन में खेल रहे हैं, विडरि चले = भयभीत होकर भागने लगे, दिग दंतिय = दिग्गज, दिशाओं के हाथी, सकेलत = सँभालते हैं, सकट (शकट) = गाड़ी, पालना, पेलत = धक्का लगा रहे हैं।

(३) सपनगत (स्वप्नगत) = स्वप्न में लीन, अचित (अचेत) = बाला, अरुन = लाल, रवि-गत = सूर्यास्त, पन्नगपति = शेषनाग।

(४) नवनीत = मक्खन, रेनु = धूल, गोरोचन = कुंकुम, रोली, सतकल्प = सौ युग।

(५) कुलहि = कलंगी वाली टोपी, मघवा = इन्द्र, सुदेस = सुन्दर, चिकुर = बाल, बगराई = फैलाकर, छितराकर, सेत (श्वेत) = सफेद, लुनाई (लावण्य) = सुन्दरता, गुरु असुर = राक्षसों के गुरु, शुक्र, देव-गुरु = देवताओं के गुरु, बृहस्पति, भौम = मङ्गल नक्षत्र, ललित वचन = तोतली बातें, अलप = थोड़ा, जलप = बोलना।

(६) बासुकि = सर्पों का राजा, मंदर = एक पर्वत जिसकी रई बनाकर देवताओं और राक्षसों ने समुद्र मंथन किया था।

(७) बिथुरि = बिखरी हुई, छिटकी हुई, सुनह्द (सुनहरा) = सुन्दर, बीच दियो बनाइ = बीच में पड़ कर सुलह करा दी, माये = सुन्दर नीलपुट = नीलम का सम्पुट, पदन = सिन्दूर।

(८) साँटी = छड़ी, अनरुचि = अनिच्छा, नाराजी, टाटी = की, आपने नाटक की परिपाटी = स्वांग की रचना, कहत न मीठी-खाटी = भला बुरा कुछ नहीं कहती।

(६) वेई वै = वे ही, जमलार्जुन = यमलार्जुन नाम के दो देवता जो शाप से युग्म वृक्ष के रूप में होगये थे और श्रीकृष्ण ने ऊखल के द्वारा उनका उद्धार किया, बारन = बदाने, मिस, हाथ बिकाने = वश में है।

(१०) दीठि = दृष्टि, कला = चतुराई, चासनी = बाँस की तीलियों से बनी टोकरी।

भ्रमर गीत

(१) घोस = ग्वालों का गाँव या मुहल्ला। खेप = राशि, ढेर। फारव = परवन। हाटक = सोना। धुरहीतें = आरम्भ से ही, मूल से ही मोरिय लिपट सुधारी = हमको बिल्कुल मूर्ख समझ लिया है। सवार = सवेरे। गहर = विलम्ब, देरी। (२) दादुर = मेंढक। माने = तोड़ती है, उखाड़ती है। (३) गाँसी = गाँस की बात, कपट की बात, चुभने वाली बात। (४) पुंजैं = समूह। घनसार = कपूर। दधिसुत = चंद्रमा भुंजै = भूँजे डालती हैं। करद = छुरी। लुंजै = लूले लँगड़े व्यक्ति। बरन = रंग। (५) रहतन = रुकता नहीं। (६) कुन्तल = केश, बाल मुरै लई = ठग लिया, मोहित कर लिया। सम्पुट तजि = प्रफुल्लित होकर करतें रैन नई = आदर्पण की अवहेलना नहीं की, प्रफुलित होकर प्रेम किया। हेग दई = पाले से मार दी। घन स्याम = बादल, कृष्ण। छिजई = दुर्बल होगई, कमजोर पड़ गई। हई (हती) = गई, थी। (७) सचु = सुख, संतोष। तवाँरी = मूर्च्छा। चखन = नेत्रों। गहवर = गुफा। (८) कालिन्दी = यमुना। धुर = ज्वर। पलिका = पलंग। चूर = चूर्ण। पनारी = छोटा, नाली। कच = केश। ब्याज = बहाने, मिस बिन मानस = विचार। (९) परतीति (प्रतीति) = विश्वास। मेचक = काले। दगा दई = विश्वास घात किया, कहा नहीं माना। (१०) प्रघार = दूर होता है। छोरि = काट कर, छोर कर। (११) कंचुकि = चोली। कंचु = बन।

विनय के पद

(१) पगु = लंगड़ा। पाई = चरण। (२) सुरगामी = ग्रामशूकर गामी = श्रेष्ठ। (३) उधारि = उद्धार करो। मगन हौं = डूबा हुआ हूँ भव ग्रम्बुनिधि = संसार-सागर। ग्राह = मगर। ग्रनंग = कामदेव। मोट = पोटली, गठड़ी। सेवार = जल के अंदर उगने वाली घास फूस के पौधे। कूल = तट। (४) विरद = नाम, यश। बनिता = स्त्री। खार = खाल, छोटा नाला। (५) सिरानो = बीत गया। ग्रनत = ग्रन्यत्र, दूसरी जगह। जवनिका = पर्दा। पिय बिहून = बिना पति की धन = स्त्री। (६) कुमत = बुरी सलाह। प्रतिहारे = द्वारपाल। मुहकम = दृढ़। (७) ग्राप ग्रागे दई = ग्रापको सिपुर्द करदी। हरहाई = दौड़ दौड़ कर खेत खाने वाली। बाँह देहु = ग्रपने बल पर निर्भय कर दीजिए। (८) पचत = हैरान होता है। पचारत = पोवा है, तूल = रूई। पुट = दीपक। ग्रलेखे = व्यर्थ, किसी हिसाब में नहीं ग्राये। (९) चोलना = चोला, वस्त्र। पखावज = ढोलकी की ग्राकृति का बाजा मृदंग। तृष्ना (तृष्णा) = लालच। काछि = सज कर। (१०, ग्रविगत = जो जाना नहीं होता, निर्गुण ब्रह्म। ग्रंतरगत = मन में। जुगुति = युक्ति। निरालम्ब = ग्राधार रहित। चकृत = चकित, विस्मय युक्त।

तुलसीदास

राम—नाम—महिमा

१) गिरा=वाणी, बीचि=लहर, कृशानु=अग्नि, अगुन=निर्गुण गनराऊ=गणेश, तियभूषनु=स्त्री-शिरोमणि, अमी=अमृत। (२) सालि=धान, लाहु=लाभ, बिलगाती=अलग होजाती, सँघाती=साथी, सुतिय=सती स्त्री, पूषन=सूर्य, कमठ=कछुआ, कश्यप, जीह=जिह्वा। (३) बरन=वर्ण, अक्षर, नामी=नाम वाला, उपाधी=गुण, उपाधि, साधी=सिद्ध करना, उभय=दोनों, दुभाखी=दुभाषिया। (४) विरति=वैराग्य, अनामय=रोग रहित, अनिमादिक=अणिमा, गरिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व और वशित्व नामक अष्ट सिद्धियाँ। सुकृती=पुण्यात्मा, अनघ=(अन्+अघ) पाप रहित, आन=अन्य। (५) पियूष ह्रद=अमृत का सरोवर, बूते=शक्ति से, अनि=नदी दारुगत=लकड़ी में, अछुत=अक्षुन, कभी नाश न होने वाला। (६) पद=पदा, अनयास=अनायास, सहज ही, सुकेतु सुता=सुकेतु की लड़की, ताड़का, बिपाकी=सर्वनाश। बतुर=पार। ७) गाथ=कथा, सुकण्ठ=सुग्रीव, नेवाजे=कृपा की, प्रसाद=कृपा। (८) महुँ=में, सगलानि=ग्लानि सहित, आत्मग्लानिपूर्वक, गुडुल=मुक्त, आवागमन से रहित। (९) भाँग=भाँग जैसा तुच्छ पूस, बिसोक=शोक रहित, सुकृत=पुण्यकर्म, मख=यज्ञ, शमन=नष्ट होना, अभिमत=इच्छित। घनकरशिपु=हिरण्यकश्यप, सुरसालु=देवताओं का शत्रु।

विनय के पद

(१) जगवंदन=संसार में वन्दनीय, विधाता=प्रदान करने वाले, उत्पन्न करने वाले, मानस=हृदय।

(२ रावरो=आपका, नाह=पति, मानी=नष्ट कर दी, मिटा दी, सिहानी=ईर्ष्या की, नाक=स्वर्ग, नाक सवारत=स्वर्ग में स्थान देते २, हौं आयो नकबानी=मेरा नाक में दम आ गया, जाचकता=भीख माँगना जगत-मातु=पार्वती।

(३) अम्ब=माता, दायबी=दिलाना, अघी=पापी, कहिबी=कहना।

(४) पातकी=पापी, आरत (आर्त)=दुःखी, ठाकुर=स्वामी, चेरो=सेवक।

(५) सिखावन=शिक्षा, सवेरो=प्रातःकाल,शीघ्र, स्रमित=थका हुआ, निवेरो=निवारण।

(६) काको=किसका, वराय=चुन-चुन कर, पषान=पाषाण, अहिल्या, व्याध=वाल्मीकि, विटप=यमलार्जुन नामक जुड़वां पेड़।

(७) नसानी=नष्ट करदी, सिरानी=समाप्त हो गई, खसै हौं=जाने दूँगा, छोड़ूँगा, रुचिर=सुन्दर।

(८) सून्य=आकाश, रविकरनीर=सूर्य की किरणों का जल, मृगतृष्णा, मकर=मगर, ग्रसे=खाता है, जुगल=दोनों, संसार और महा

(९) कस=कैसे, मृषा=झूठ, संसृति=सृष्टि, संसार, कीर=तोता, संमत=अनुकूल, मैं मोर=माया।

(१०) नानरू=रूप,वेष, साखि=साक्षी, प्रमाण, मने=मना कर दिया, रोक दिया। निगमनि=वेदों ने।

(११) हीं=हृदय, हम हम करि=अहंकार के वश होकर, वनितादि=स्त्री इत्यादि, पामर नीच, दुर=माधुरी इच्छाएँ।

राम वन वास

(१) काकर=तोते के प्रारम्भ में आने वाले कोमल पंख, जो समय पर स्वतः झड़ जाते हैं, औध=अयोध्या, बटाऊ=बटोही, पथिक।

(२) अजाखुर=बकरी का खुर, तटिनी=नदी (यहाँ गंगा), करारे=किनारे।

(३) कटि=कमर, परसे=छूने से, तरनी=नाव, घरनी=गृहिणी, स्त्री, वरु=चाहे।

(४) पात=पत्तों का दोना, सहरी=शफरी, मछली, बारे-बारे= छोटे-छोटे, बाद=विवाद, झगड़ा।

(५) रुख=इच्छा, बाल=बालक, अयानी=भोली, हेरि-हेरि= देख-देख कर।

(६) कनी=बूँदें, मधुराधर=कोमल ओंठ, चारू=सुन्दर।

(७) परिखो=प्रतीक्षा करो, पसेऊ=पसीना, पखारिहौं=धोऊँगी। भूभुरि=गर्म धूल, डाढ़े=झुलसे हुए, श्रम=थकावट, नाह=पति।

(८) तून=तरकस, सरासन=धनुष, सुठी=सुन्दरि।

(९) साने=सिक्त, भरे हुए, लाहु=लाभ, तड़ाग=तालाब।

(१०) चितै=देखकर, लोल=चंचल, कमान=धनुष, तृनतोरे= न्योछावर करती है, निषंग=तरकस। (११) सायक=बाण, मृगया= शिकार। चकै=चकित होते हैं, मनोभव=काम, रतिनायक=कामदेव।

(१२) [illegible], रघु=दूरी, कंज=कमल।

सेनापति

१ लचित=लज्जी हुई, सुरतरु=कल्पवृक्ष, अरुई=लजी हुई, प्रिय आगम=पति का आगमन। रंजन=पालन करने वाली। (२) अगम=दुर्बोध, तंद्रन=तंद्रा। अर्थ=शुद्ध, अखण्ड, सभंग=खण्डित, टूटा हुआ, सोंधे=सोद्धार, बुद्धवर, गाहकी करत हैं=चाहते हैं, इच्छा करते हैं। (३) फल=वाण की नोक परिणाम, त्यागी=साहस, पद=तीर में लगे हुए, काव्य में वर्णित वस्तु। पंच. गुन=प्रशंसा, काव्यगुण (ओज, प्रसाद, माधुर्य) श्रवन=कान। चापधारी=धनुधारी। (४) पट=दरवाजा, वस्त्र, घरी=कमी, घड़ी, मोर्ग=विलासी, सर्प, कन-कन=दाना-दाना, सूम=कंजूस। ५) ध्यान हैं=शांतिमय, द्वारकाहू=द्वारका भी, किसी के द्वार पर, रैशब=शैशव, नई आयु, मरतन=मृग, छिपाए=लगाना, नासि=मर्दन, दिबन=छिपाहित, बेपरहित शिर मुँडना (६) धार=नदी किनारे का घाट, तलवार की धार, पानी=जल, आब, चमक, रज=राज्य श्री, धूल, नीकैई=भले प्रकार। अमोल=सच्ची भेट, पतवारी=नाव के पीछे का त्रिकोणाकार अंग। ७) द्विजन=दातों बाह्मणों, बान=रंग, चारवर्ण। स्त ति=वेद, कान, लागी अब लार है=अब लार लगी रहती है, लार गिरती रहती है; कामिनियाँ पीछे लगी रहती हैं। नाक=स्वर्ग, नासिका; जवन=यवन, म्लेच्छ, जब न। सुगलीन=गलियों में, सुगाली; कृष्ण=काले, कृष्णचन्द्र; केसो=बाल, विष्णु, केशव; जहाँन=संसार, जहाँ नहीं। (८) भौ=भव, संसार। बिशद=सुन्दर; स्वच्छ; बरन=वर्ण (अक्षर रंग; बानी=वाणी; वचन; स्वभाव। सियरानी=सीता रानी; शीतल हुई। तीरथ=अवतार; तीर्थ। (९) शेषनामे=शेषनामचे। सेस=शेष नाग; बाकी। सहसवदन=हजार मुख वाला; शेष नाग। सरि=बराबरी। पूजे=पहुँचता है। पुर=लोक; नगर। पोटा=मालदार। सुरति=स्मरण। बानिये=वाणी से; अपनी कविता द्वारा; बनिये को, नाहु=पति, साहु=सेठ; पोद्दार।

मलाक, वासर=दिन, संक=भय, पंकजिनी=कमलिनी, (२४) तुषार=पाला, तुसार=माघहार, सन=मुख, टिकिकै=टिकट कर, द्यौस=दिन, दहसकर=सूर्य, बड़ाई=प्रशंसा, (२५) नाह=पति, अवरेखियत है=दिखाई देता है, जिलात=ओत जाता है। त्रिन=तृण, तनकौ=तनिक भी पलव=कल्प; ४,३२०,०००,००० वर्ष का समय जिसके व्यतीत होने पर ब्रह्मा का एक दिन समाप्त होता है। सिराती=समाप्त होती। (२६) पालो=पाला, लालो परयो=चिन्ता हो गई। ताप्यौ चाहैं वारि कर=आग जला कर हाथ सेंकना चाहते हैं। गयो घाम पतराइ है=धूप हलकी पड़ गई है, सकेरिकर=समेट कर, अम्बर=आकाश।

भूषण

शिवाजी की दान शीलता

(१) साहितनै=शाहजी का पुत्र. शिवाजी, प्रतिच्छन=प्रतिक्षण, गन=गण, समूह, गनै=गिनै, गिनती करे, साहिन=बादशाहों, गरीब-नवाज=दीनबन्धु। (२) भरत हौ=पालन करते हो, गुनाह=अपराध, भृगु=एक ब्राह्मण ऋषि, जिन्होंने विष्णु भगवान की छाती में लात मारी थी। (३) बलत=यश, गौरव, बिदारि=विदीर्ण कर, दूर करा दीह=दीर्घ (४) तुरीगन=घोड़े, करी=हाथी. निहाल करै=तृप्त करे, ऋतैं=ऋतुओं में। (५) धनद=कुबेर, बिलाय जात हैं=नष्ट हो जाते हैं। खिभे ते=रुष्ट होने से, खलक=संसार, अनंग=अङ्ग रहित, अङ्गों को काटना, दीबो=दान देना, संक=भय, दुनी=संसार, दुनी=दुहरे, सुबरन=सुन्दर अक्षर, सोना, लारस=पेड़ों का रस, जिसके पास पूनाना में चूड़े रूमते हैं, रूसन=रूखे मनुष्य, वृक्ष, दामें=हाथ, हाथी देत=तालियाँ पीटते हैं, प्रशंसा करते हैं, (६) कोकनद=कमल, (१०) बिचलायो=विचलित कर दिया। (११) वितान=चँदोवा, मण्डप, छिति=पृथ्वी।

नचत = नाचता है, परत = मरा हुआ है, घन = बहुत,धूर = शक्ति,बल, डाबिद = युद्ध, (३०) बिरुद = विरद, अत्यन्त, गब्बरनके = गर्वधारियों के, रलत हैं = नष्ट हो जाते हैं, ऐन = अत्यन्त, उथलत हैं = उलड़ते हैं थारा = नाली, पारावार = समुद्र, (३१) भूधर = पहाड़, जुत्थ जुत्थ = झुण्ड के झुण्ड, भृकुटि चढ़ाई है = क्रोध किया है, ३२) जारन = नीच मनुष्य, गैर मिसिल = अनुचित, बजकन लाग्यो = बक बकाने लगा। नौरंग = औरङ्गजेब। (३३) मुरचान = मोरचा, रक्तपंक्ति, हल्ला कियो = धावा बोला, दावा बाँधि = घेरा डाल कर, झोट = समूह, ताव दै दै मूँछन पै = मूँछें ऐंठ, ऐंठ कर, (३४) नाग = सर्प, हाथी, जूह = झुंड पुरहूत = इन्द्र, गोल = झुण्ड, पच्छाँह = पश्चिम। (३५) कूरम = कश्यप कछुवाहे राजा, विदलिगो = विदीर्ण हो गया, चिकारी = चिंघाड़ कर, कोलहू = बाराह भी, खगराज = गरुड़। भुजंग = साँप।

घनानन्द

(१) जोग = संयोग, कोविद = निपुण, विद्वान, चाह = प्रेम, सुच्छन्द = स्वच्छन्द, निर्मल, (२) छकी = तृप्त हो कर, बौरे = पागल, चकी = चकित, बकी जाति = बकवाद करने लगती है, तकी = देखी, समझी, (३) हित = प्रेम, अनखि = क्रोधित होकर, रूठ कर, अरसा-इही = आलस्य करोगे, कौलौं = कबतक, (४) दई = भगवन्, बोरिए = डुबाइए, गुन = रस्सी, गुण, ज्याए = जिला के। (५) पन = प्रण, नवहार हौं = नहीं हारूँगा, शक्ति नहीं हूँगा। दव = दावाग्नि, उदेग = उद्वेग, दुःख, तचाय हौं = तपाऊँगा, टेक = हठ। (६) निराव = पंख रहित, दुरी = छिपी हुई, द्रुम = वृक्ष; थनक = मूर्ति, वेष, निकाई = सुन्दरता। (७) गौन = गमन; दरकोहीं जाति = दया का स्वभाव;

श्रमोही = निर्मोही; भूरि = जड़ । (८) बोरिलै = कौंचले; फाटले; पैंडपरे = पीछे पड़े; कलापी = मोर; वज्रमारे = वज्रमारे; एक प्रकार की गाली; (६) ज्ञान = ज्ञानी । श्यान = श्रम । (१०) ज्ञानराम = सुजान कृष्ण । दीस्यो = दिखाई दिया । (११) परजन्य = बादल; दूसरे के उपकार के लिए उत्पन्न होने वाला । जथारथ = यथार्थ; वास्तव में । दरसौ = दिखाई देते हो । निधि = समुद्र, जीवन-दायक = जीवन दान करने वाले; जल देने वाले । परसो = स्पर्श करो, अनुभव करो, बिसासी = विश्वासघाती (विरुद्ध अर्थ में) (१२) हीं = थां । चायान = चाव से; उमंग से; दुखदाई = दुःख भरी (१३) अनग = कामदेव; रिझवार = प्रसन्न होनेवाले (१४) रति = लज्जा; लोनन का = दुर्बलों का; निधि = मायदार । (१५) गहन सो गहिजो = ग्रहण सा लग गया, अत्यन्त पीड़ा हुई; मीचिन = लहरों । हैजौ = हुआ; दहिगो = जल गया; मारिगो = मरी हुई; दुखी; (१६) चाहि = देख कर; दिखाइवो = दिखाना; चोरनो = उत्साह उमंग; मयंक = चन्द्रमा । (१७) साधन = नियम तप; नैंसुक = किंचित (१८) अवरेख्यो = चित्रित किया; समझा; अनलेखे = बिन गिनती; अगणित; (१९) बाय = हवा; पारत क्यों नहीं = मरता क्यों नहीं । (२०) बहियै = बही; जीवनी = जीवन देने वाली । (२१) छीलर = उथला; छिछिला; छ्वै है = छुयेगा; लै है = लेगा । (२२) लोयन = लोचन, नेत्र; अराधौ = आराधना करो, सून = काटे; दुखदायी । (२३) प्रशायन = अस्साधु; अञ्जन; नम = नियम, चाहि = देख; चोदित = बदाव; अवगाहि = स्नानकर; दूर । (२४) आलबाल = थाँवला; थाला; चाह आलबाल = प्रेम के स्तूक । (२५) खरे = सच्चे; धरसनि मरे हैं = आतुर हो रहे हैं, पयान = प्रयाण, विश्वास, निदान कौं = अन्त में, बिलत = छकते हैं, पयान ग्रीक = भागकर, दौड़कर ।

सूर्यमल

(१) सहणी=सह्य है, सबरी=सारी, दाह=जलन, वलय=कंकण,चूड़ा, नाह=पति ।

भावार्थ—हे सखी ! मुझे और सब सह्य हो सकता है, पर पुत्र का मेरे दूध को और पति का चूड़े को लजाना—ये दोनों समान रूप से दाहकारी हैं ।

(२) खल=शत्रु, मोतीहल=मोती, नाह री=पति की ।

भावार्थ—हे सखी ! यदि शत्रु युद्ध से भाग गया हो तो मोतियों से थाल सजा ला, (जिससे प्राणनाथ की आरती उतारूँ) और यदि अपने ही दल के लोग भागे हों तो प्राणनाथ का साथ मत बिछुड़ने दे । (सती होने की सामग्री प्रस्तुत कर)

(३) हथलेवे=पाणिग्रहण के समय, विलग्गा=लगने से, चुभने से, माय=माता, हेकलो=अकेला, मो=मेरा ।

भावार्थ—पाणिग्रहण के समय उनकी हथेली पर के तलवार के मूठ के निशान मेरे हाथ में चुभने से हे माता ! मैं समझ गई कि युद्ध में अकेले होजाने पर भी वे मेरे चूड़े को नहीं लजायेंगे ।

(४) समली=चील, मख=खा, जंबुक=गीदड़, म=मत, बाह=जा, पण=प्रण, पण री=पत्नी का, किम=किस प्रकार, पेख ही=देखेंगे, विणट्ठा=विनष्ट हुए, रहित, बिना । नाह=पति ।

भावार्थ—हे चील ! और सब अङ्गों को तू निःशंक होकर खा, पर गीदड़ों के पथ का अनुसरण मत कर (नेत्रों को मत निकाल)। क्योंकि यदि तू नेत्र निकाल लेगी तो मेरे पति बिना नेत्रों के अपनी स्त्री के सती होने के प्रण का पालन किस प्रकार देखेंगे ।

(५) धणी=पति, जैत=जीत, नीराजण=आरती, वाधावियो=उतारी, कुमेत=घोड़े का एक रंग जो स्याही लिये लाल होता है।

भावार्थ—अपने पति की विजय हुई सुनकर पत्नी पति के घोड़े की आरती उतार कर और हाथ से थपथपा कर कहती है कि हे कुम्मेत! तुझ पर बलिहारी है।

(६) दाझियाँ=दाझने से, छूने से। तिया=स्त्री। चाव=उमंग।

भावार्थ—वीर सती रमणी कहती है—हे सरदारो! आप भूल कर भी आग पर पैर मत रखना। इसके छू जाने से राख ही बचती है। इसका आलिंगन करने को तो स्त्रियाँ ही लालायित रहती हैं।

(७) असि धावण=सिकली गरनी। झाटक=झटका। झाटकवाँ=वार करते हुए।

भावार्थ—हे सिकलीगरनी! मैं तेरे पति पर अनेक बार न्योछावर हूँ कि उसने तलवार को धार इतनी तेज करदी कि युद्ध में वार करते समय हाथ को एक भी झटका नहीं लगा।

(८) मो=मेरे। सह=साथ। दाह=जलने के। उरवां=स्वर्ग। धर= पृथ्वी। रजवट=राजपूती, क्षात्र धर्म। राह=रीति।

भावार्थ—हे सखी! मेरे सती होने के समय सुन्दर ढोल बजाना। क्योंकि तू तो क्षात्र धर्म की इस उल्टी रीति को जानती है कि इसमें पृथ्वी पर बीज बोया जाता है और स्वर्ग में खेती फलती है।

(९) घरे=घर में, काय=क्यों, बलेवा=जलने के लिए, हूलसे= लालायित हो रही है, मरेवा=मरने के लिए।

भावार्थ—घर पर सास कहती है कि आज अचानक इतना हर्ष क्यों है। (कदाचित् यह नहीं जानती कि) उसका पुत्र मरने को जा रहा है और पुत्र वधू सती होने को लालायित हो रही है।

—

(१०) श्रवकी=उद्दत, उद्दण्ड, बाग=लगाम।

भावार्थ—हे सखी! मेरे उद्दण्ड पति को तो देख जो कि घोड़े की लगाम पकड़ कर अकेला ही शत्रु की सेना को इस प्रकार नष्ट करता जा रहा है, जिस प्रकार कोई शराबी शराब केप्यालोंको खाली करता जाता है।

(११) दीह=दिन, मिचै=बंद हो जाते हैं, हकालै=ललकारें, सीह=सिंह,

भावार्थ—जिस सिंह को सामने सुनकर ही दिन काला-पीला दिखाई देने लगता है, पैर पीछे पड़ने लगते हैं, छाती धड़कने लगती है और आँखें बन्द होने लगती हैं, उस सिंह को ललकारने का साहस कौन कर सकता है!

(१२) नायण =नाई की स्त्री, काल =कल, जंग =युद्ध, धारौं *लागी जे =तलवार की धार के नीचे आ जायें, घण =बहुत।*

भावार्थ—हे नाइन! आज पैरों में मेंहदी मत लगा, क्योंकि कल युद्ध सुना जाता है। यदि पति तलवार के घाट उतरें तो (सती होने के समय) खूब रंग देना।

(१३) ऊभी =खड़ी, गोख =गवाक्ष, झरोखा, अवेखियो =देखा, पैजांरो =दूसरों का, विपक्षियों का, दल =सेना, सेर =प्रबल, धव =पति, लीधो =ले लिया, नालेर =नारियल।

भावार्थ—झरोखे में खड़ी हुई क्षत्राणी ने देखा कि विपक्षियों की सेना प्रबल है। अतएव पति के मरने का समाचार न सुनकर भी इसे अवश्य भावी मानकर पत्नी ने सती होने के लिए नारियल हाथमें लेलिया।

(१४) श्राणी =लाई गई, घरेह =घर पर, वालही =प्यारी, मूझ =मुझे, जीव हूँ =जीवित रही।

भावार्थ—(विवाद के समय) स्वामी स्वयं आगे होकर मुझे पीछे करके लाये थे। लेकिन यदि (पति के मरने के बाद) मैं जीवित रही तो (सती होने के समय) उन्हें मुझे आगे करना पड़ेगा।

(१५) भव = संसार, लोक; भेटेस = भेंट होगी।

भावार्थ— हे कंत ! आपने अच्छा किया जो घर भाग आये। अब आप मेरा वेष धारण कर लीजिए। अब इस लज्जित चूड़ियों वाली पत्नी से तो आपकी दूसरे लोक में ही भेंट होगी।

(१६) की = क्या, हणियाँ = मरने पर, बलती = चलती, घण = अति, नेहड़ै = प्रेम, लीधो = लिया।

भावार्थ— हाय ! तुमने घर आकर क्या किया? यदि आप मारे जाते तो मैं तुम्हारे साथ सती होती। (पति ने उत्तर दिया) हे प्रिये, तुम्हारे प्रेमाधिक्य ने मुझे युद्ध क्षेत्र से जल्दी ही बुला लिया।

(१७) थिया = होगये, वधियो = बढ़ गया, जाल = झंझट।

भावार्थ— हे पति ! तुम्हारे बेटों के पुत्र होकर घर में जाल बढ़ गया है। काल तुम्हारी आयु देखकर लुभा रहा है। अबतो युद्धसे भागना छोड़दो

(१८) किण = किस।

भावार्थ— हे पति ! अब आप ये मेरे आभूषण और मेरा वेष धारण कर लीजिए। मैं तो योगिन हो चली। अब आप के किस काम की। आपका मेरी चूड़ियों का खर्च भी मिट गया।

(१६) धुपेती = सफेदी, बालों का सफेद होना; की = क्या; थण = स्तन; धातै = लेते हो, डालते हो।

भावार्थ— हे पति ! बालों की सफेदी देखते हुए भी क्या और जीने की आशा है ! आपके जो हाथ मेरे स्तनों पर रहते थे, उनसे आप कैसे मुँह में तिनका लेते हो। (शत्रु से दीनता दिखाते हो

(२०) कंगियाँ = चोली; आपीजै = लाना; मोनूँ = मुझको; दूण = दूनी।

भावार्थ—हे दर्जिन ! अब मेरे लिये जम्बी कुर्तियाँ सींकर लाया कर; मेरे सधवापन की पोशाकें न सीने से जो तुझे घाटा होगा, उसकी पूर्ति मैं तुझे दूनी सिलाई देकर करूँगी।

(२१) मुवा = मरे हुए; किसा = कैसा; बणाव = शृंगार।

भावार्थ—हे सखी मणिहारी ! चली जा। अब मेरे घर पर मत आना। क्योंकि मृतक के समान (कायर) पति घर भाग आए हैं। विधवाओं को शृंगार कैसा ?

(२२) गंधण = गंध की स्त्री, इत्र, तेल बेचने वाली; कूकी = चिल्लाई; भूँडा = अशुभ; मोगण = घर; बलण = जलने के लिये। अतर = इत्र।

भावार्थ—गंधिन चिल्ला उठी—गजब होगया ! उसका रण से भाग कर घर आना मेरे लिये तो बड़ा बुरा सिद्ध हुआ। उसकी पत्नी ने सती होने के समय लगाने के लिए जो महँगा इत्र निकलवाया था, उसे अब कौन खरीदेगा ?

(२३) भ्रूण = गर्भ· भाव = वीरता के भाव; नालो = नाल; वाढ़णरो = काटने की; जणियो = पैदा किया हुआ; साव = बालक।

भावार्थ—मैं उन रानियों पर न्योछावर हूँ जो गर्भ में ही उन्हें वीर भावों की शिक्षा देती है कि जन्म लेते ही बालक नाल काटने की छुरी को लेने के लिए झपटता है।

(२४) जाँचा = जच्चा; हदै = के; तापणें = तापने के लिए। धी = पुत्री; टगलाय = टकटकी लगाकर।

भावार्थ—मैं उन रानियों पर बलिहारी हूँ जो गर्भ में ही बालिकाओं को ऐसी शिक्षा देती हैं कि प्रसूति गृह में जच्चा के तापने की अंगीठी की अग्नि को एकदम देखकर हर्षित होती है।

(२५) लखीजै = देखिये; नहीं = नहीं; फिरंती छाहं = नाशवानशरीर; मुड़ियाँ = मुड़ने पर, पीठ दिखाने पर; गींदवो = तकिया; वले = फिर।

भावार्थ—हे पति ! अपने और मेरे दोनों कुलों को देखना न कि अपनी फिरती हुई छाया को। यदि आप युद्ध से पीठ दिखाकर भाग आये तो सिरहाने के लिए तकिया भले ही मिल जाय, पर पत्नी की भुजा तो फिर नहीं मिलेगी।

(२६) हेली = सखी; की = क्या।

भावार्थ—हे सखी ! उस आश्चर्य की कथा तुम से क्या कहूँ ? मैं तो अपने पति पर बलिहारी हूँ। जिन दो हाथों को मैं घर में देखती हूँ कि रण में हजार हो जाते हैं।

(२७) भोला = मूर्ख; अंत = मृत्यु; पहुँचे = पहुँचेगी; ऐण = घर। बीजी = दूसरी, अधिक; दीठाँ = दिखाई देगा।

भावार्थ—रे मूर्ख ! तू किस डर से भाग आया ? क्या घर भाग आने से मृत्यु यहाँ तक नहीं आ पहुँचेगी ? यहाँ मरने से यह दूसरी बात होगी कि बेचारी कुल वधू को लज्जा से नेत्र नीचे करने पड़ेंगे।

(२८) वरज = रोकदें; घावाँ = घायल; पावाँहूँत = चरणों में।

भावार्थ—ढोल का बजाना बन्द कर। सब को अपने अपने घर भेज दें और सती होने के नारियल को भी घर में रख दें। घायल होकर पति पधार आये हैं। उनके चरणों में प्रणाम है।

(२९) बाल = बालक; बापरो = पिता का; लहे = लेते हैं।
वंकाल = शिर।

भावार्थ—युद्ध तो राजपूतों की खेती है, इसे वीर बालक नहीं भूलते वे फिर बारह वर्ष की आयु में ही अपने पिता के बैर का बदला लेते हैं।

(३०) अठे = यहाँ; उठे = वहाँ, उस लोक में; माँहिर्याँ = में; धम = धम।

भावार्थ —अवसर पर मरने वालों को इस लोक में सुयश और परलोक में ऐश्वर्य प्राप्त होता है और घर पर पड़े-पड़े मरने से यमराज नर्क में ले जाता है।

(३१) पहल = पहले; मिले = मिलन; किण = किसने; कीधा = किया; बीजल = तलवार; साहे = लेकर; प्राय = लिये।

भावार्थ—प्रथम मिलन के समय पत्नी ने पूछा कि हे नाथ! हाथ में ये कठोर चिन्ह किसने किये? पति तलवार पकड़ कर बोला—इस डाकिनी ने और पृथ्वी के लिए।

(३२) मंगली = मांगलिक, शुभ, चँवरी = विवाह मंडप, कंवरी = कुमारी।

भावार्थ—विवाह के समय मांगलिक ढोल सुन कर वर की मूँछें भौंहों से जा लगी। यह देख कर कुमारी ने विवाह मंडप में ही जान लिया कि पति मृत्यु का प्रेमी है।

(३३) ग्रीव = गर्दन। सिराह = प्रशंसा, परणांता = विवाह समय; ओछो = कम।

भावार्थ—बिना गर्दन मोड़े देखना और वीर शत्रु की प्रशंसा करना इन दो बातों से विवाह के समय ही पत्नी ने जान लिया कि पति की आयु थोड़ी है।

(३४ पेटी = सदूक; मौड़ = सेहरा; मांर, पडवै = शयन गृह में। दीठो = दिखाई दिया।

भावार्थ—शयनागार में संदूक में उनका सेहरा रखते समय उनके घाव जो मैंने देखे; उनसे ही हे सखी! मैंने समझ लिया कि पति देव कुछ दिन के ही मेहमान हैं।

(३५) खावै = कंधे पर; जण-जण = प्रत्येक मनुष्य; हर कोई, वहै = चलते हैं; कस = कस कर; भडां = योद्धाओं की; वह बहिया = बजने पर; त्रंबाल = नगाड़ा।

भावार्थ—सब कोई तलवार कसकर बाँधते हैं और ऐसी अकड़ से चलते हैं; मानों सारी शक्ति उन्हीं के कंधों पर है। परन्तु शूर और कायर की परीक्षा तो युद्ध के नगाड़े बजने पर ही होती है।

(३६) सीह = सिंह; बाजो = कहलाओ. दीन = दरिद्र. दीह = दिन हीथल = पंजा; पाड़ै = गिराता है. हाथियाँ = हाथियों को. भड = योद्धा।

भावार्थ—सरदारो! तुम सिंह कहलाने के अधिकारी नहीं हो. क्योंकि तुम दीन बन कर दिन गुजार रहे हो। सिंह कहलाने का अधिकारी तो वही वीर हो सकता है जो हाथियों को अपने पंजे से गिराता है।

(३७) छानै = चुपके से. जिण = जिस. देसडै = देश में।

कायर की स्त्री चुपके से अपने पति को छिपा कर कहती है कि हे भगवन! जिस देश में सिर बिकते हों, वह देश कभी मत दिखाना।

(३८) दीखो = निन्दा करो। देखो = देखो. घर = घर. महल = महिला।

भावार्थ—हे पुरुषो! स्त्रियों की निन्दा मत करो। यह तो संगति देखना चाहिए। वीरों के घर में वीर महिला मिलेगी और कायर के घर में कायर।

(३९) नधी = नहीं. अरियाँ = शत्रुओं से. लीधो = लिया।

भावार्थ—हे सखी! पति के जीते जी कभी शत्रुओं को शान्ति नहीं मिली। और जब पति होते समय मैंने उन्हें गोद में लिया तब भी उनकी मूँछें ऐंठी ही हुई थीं।

(४०) इला = पृथ्वी. हालरिया = लोरियाँ. हुलराय = झुलाई हुई। माय = माता।

भावार्थ—अपनी भूमि किसी को न देना. इस भाव की लोरियाँ गाती हुई माता अपने पुत्र को झुला रही है और झूले में ही उसे मरने की महत्ता सिखा रही है।

(४१) बाड़े = घर के. बासड़ो = निवास. रणांवे = खनकती रहती है खाग = खड्ग तलवार. ऊटा = नवोढ़ा. नवयुवती।

भावार्थ – हे सखी! वैरी के घर के पास इसका निवास है। खंग तलवार बजा करती है। इस नवयुवती के भाग्य में सुहाग कितने दिन का मेहमान है!

(४२) हूँ = मैं. बाथ = आलिंगन; हाको = शोर. हुलसै = हर्षित होते हैं; कौच = कवच. प्राय = मैं।

भावार्थ—हे सखी! मैं एक आश्चर्य की बात तुमसे कहती हूँ। वे घर में तो मेरी भुजाओं में समा जाते हैं. किन्तु युद्ध की पुकार सुनते ही वे मरण पर भी इतने प्रसन्न होते हैं कि कवच में भी नहीं समाते।

(४३) दुरंग = दुर्ग. किला. कढ़णो = निकलना. विणंठा = बिना. नेक = अच्छा।

भावार्थ—दुर्ग में से शरीर का निकलना और शरीर में से जीव का निकलना दोनों एक ही बात है। तब तो किले में से मरकर निकलना ही अच्छा है, जिससे नाम तो रहे।

(४४ गैंद = गयंद. हाथी. गिवल = गैंडे. गिडराज = शूकर. वृकज = गीदड़. तारातड़ा = सामर्थ्यवान. मंडे = मचा रहे हैं।

भावार्थ—जिस वन मे हाथी; गैंडे और बड़े बड़े सूअर भी भूल कर भी नहीं जाते थे. उसी वन में आज गीदड़ भी शक्तिवान बने ऊधम मचा रहे हैं।

— — —

परिशिष्ट २

इस संग्रह में प्राचीन कवियों की तीन काव्य-भाषाओं की रचनाएँ संकलित की गई हैं। विद्यार्थियों की सुविधा के लिए उनका स्थूल परिचय और पहिचानने के कतिपय नियम यहाँ दिये जाते हैं।

(१) अवधी

जब अपभ्रंश भाषाओं का काव्य के क्षेत्र से धीरे-धीरे पलायन प्रारम्भ हुआ, तब उनका स्थान ग्रहण करने वाली भाषाओं में अवधी प्रमुख है। अवधी बोली का क्षेत्र लखनऊ और फैजाबाद का प्रदेश है। साहित्य में इस भाषा को प्रतिष्ठित करने वाले सूफी कवि थे। मलिक मुहम्मद जायसी ने ग्रामीण अवधी को काव्य की भाषा बनाया। गोस्वामी तुलसीदासजी ने उसे साहित्यिक रूप देकर अपने अमर काव्य रामचरित मानस की रचना की। प्रबंध काव्य की रचना के लिए यह भाषा बहुत उपयुक्त है। दोहा, चौपाई और बरवै छन्दों में यह खूब फबती है।

विशेषताएँ—

(१) उत्तम पुरुष 'हौं' मध्यम पुरुष 'तूं' और अन्य पुरुष 'सो' का प्रयोग होता है। विभक्ति युक्त होने पर उत्तम पुरुष में 'हौं' के स्थान पर मैं के रूप ही चलते हैं—

(२) सम्बन्ध वाचक 'जो' और नित्य सम्बन्धी 'सो' के रूप में विभक्ति युक्त होने पर 'जेहि' और 'तेहि' हो जाते हैं:—

"राजा बंदी जेहि के सौंपना। गा गोरा तेहिपहँ अगमना।"

(३) प्रश्नवाचक 'कौन' का रूप 'को' होता है। संबंध कारक में 'का' रूप रह कर 'कर' विभक्ति जोड़ी जाती है। यथा-

"खेल हार पहुँ काकर होई।"

"कँवल न रहा और को वेली।"

(४) कर्ता कारक की विभक्ति 'ने' का प्रयोग नहीं मिलता शब्द को ऐकारान्त कर देने से भी काम निकल जाता है। यथा-

"गोरा-बादल खाँड़े काढे।"

"गोरै साथ लीन्ह सब साथी।"

(५) कर्म कारक में 'हि' प्रत्यय का प्रयोग होता है:—

"राजहिं चली छोड़ा कै।"

(६) सम्बन्ध कारक की विभक्ति के 'कर' 'कै' 'के' तीनों रूप मिलते हैं:—

(१) "पदमावति कर सजा विमान्।"

(२) "सब भँडार कै साहि स्यो कूँजी।"

(३) "पदमावति के भेस लोहारू।"

(७) सामान्य भूतकाल के रूप प्रायः खड़ी बोली की तरह ही होते हैं:—

"औरह सै चंडोल चलाए।"

"रावहिं चली छोड़ाये।"

(८) सामान्य वर्तमान काल में 'हि' प्रत्यय लगाया जाता है:— "चहुँ दिसि पवँर कहि सब द्वारा।"

"हीरा रतन पदारथ झूलहि।"

(९) भविष्यत् काल की क्रिया म 'ब' प्रत्यय जोड़ा जाता है:— "करब सेवकाई।"

(१०) विधि आदेश या प्रार्थना सूचक क्रिया में 'वहु' प्रत्यय लगता है:—

"तो पठवहु कैलास"

"पहले दरस देखावहु।"

(११) 'य' के स्थान पर बहुधा 'ज' का प्रयोग होता है:—

'सत जोजन प्रमाण सै धावौं।'

(१२) यकारान्त 'य' बहुधा 'उ' हो जाता है:—

'का पद्मिनाथ आउ लो पूजो।'

ब्रजभाषा

यह शौरसेनी अपभ्रंश से बनी हुई एक छोटे से प्रदेश की बोली है, जो अपने माधुर्य के कारण काव्य-रचना में प्रयुक्त हो कर 'भाषा' कहलाने लगी। इसका क्षेत्र आगरा, मथुरा, भरतपुर, करौली के आसपास का भूभाग है, जो 'ब्रज' कहलाता है। श्री कृष्ण भगवान ने इसी भूमि की मिट्टी में खेल-खेल कर माता यशोदा से माखन रोटी माँगी थी और अनेक लीलाएँ की थीं। इस बोली को काव्य-भाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय कृष्ण भक्त कवियों को ही है। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी से लेकर आज तक इस भाषा में अनेक कवियों ने काव्य-रचना की है। सूर, तुलसी, रसखान, नन्ददास, आदि कवियों ने भक्ति रस पूर्ण तथा बिहारी, देव, मतिराम, पद्माकर, घनानन्द, सेनापति आदि ने शृँगार-परक रचनाएँ करके ब्रजभाषा की शक्ति और व्यापकता का परिचय दिया। भूषण, सूदन और लाल ने वीर रस की कविता इसी भाषा में की। ब्रजभाषा सब रसों की रचना के उपयुक्त है, किन्तु विशेषकर शृंगार और करुण रस इसमें विशेष फबता है। कवित्त और सवैया छन्द तथा भिन्न भिन्न राग-रागनियों के पद इसमें विशेष सुन्दर बन पड़ते हैं।

पहचान और विशेषताएँ—

(१) इ और उ के बाद अ का उच्चारण ब्रज को प्रिय नहीं। संधि करके य तथा व कर दिया जाता है, यथा—

सिआर से स्यार

कुआँर से क्वाँर

(२) व्रज के उच्चारण में कर्म के चिन्ह 'को' का उच्चारण 'कौं' के समान, अधिकरण के चिन्ह 'में' का उच्चारण 'मैं' के समान हो जाता है।

(३) साधारण क्रिया के तीन रूप होते हैं—

(क) 'नो' से अन्त होने वाला, जैसे—करनो, लेनो, देनो।

(ख) 'न' से अन्त होनेवाला, जैसे—आवन, जान, लेन, देन।

(ग) 'बो' से अन्त होने वाला, जैसे—करिबो, लैबो, दैबो।

(४) सकर्मक भूत कालिक क्रिया का लिंग और वचन कर्म के अनुसार होते हैं, यथा—

१—हौं सखि नई चाह इक पाई।
२—मैया री, मैं नाहीं दधि खायो।

(५) क्रियाओं और सर्वनामों में कभी-कभी पुराने और नये दोनों रूप पाये जाते हैं, यथा—

	(पुराने)	(नये)
क्रिया—	करहिं, करहु	करैं, करौ
सर्वनाम—	जिनहि	जिन्हें
	जाहि	जाको
	ताहि	ताको

(६) अवधी क्रियाओं के 'ब' में 'ई' मिला देने से विधि क्रिया होजाती है, जैसे—पायबी, आयबी, जानबी आदि।

(७) सर्वनाम उत्तम पुरुष कर्त्ता कारक—मैं, हौं (बहु० हम)
„ „ कर्म कारक—मोको („ हमहि)
„ „ संबंध कारक—मो („ हमारो)
„ मध्यम पुरुष कर्त्ता कारक—तू, तैं („ तुम)
„ „ कर्म कारक—तो कों, („ तुमकों)
„ „ संबंध कारक—तेरो („ तुम्हारो)
„ अन्य पुरुष कर्त्ता कारक—वह, सो(„ वै, ते)
„ „ कर्म कारक—वाको, वाहि, ताको, ताहि
„ „ संबंध कारक—ताको।

(८) ब्रजभाषा के कुछ विशेष कारक चिन्ह ये हैं—

कर्त्ता—ने	करण—सों, तें
कर्म—कों	सम्प्रदान—कौं
अपादान—तें	संबंध—को
अधिकरण—मैं, मों, पै	

(९) संज्ञाएँ, विशेषण और सम्बन्ध वाचक सर्वनाम प्रायः ओकारान्त होते हैं—
घोरो, झगरो, छोटो, बड़ो, अपनो, मेरो, तुम्हारो।

(१०) सर्वनामों में कारक चिन्ह लगने के पहले, अवधी भाषा की तरह 'हि' नहीं लगता—

अवधी	ब्रज
काहिको	काको
जाहिको	जाको
ताहिको	ताको

डिंगल

नागर या शौरसेनी अपभ्रंश से राजस्थानी भाषा का जन्म हुआ, जिसके साहित्यिक रूप का नाम "डिंगल" है। राजस्थानी भाषा का डिंगल नाम कब और क्यों पड़ा, इस विषय में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। कोई इस शब्द की उत्पत्ति 'डगल' शब्द से मानते हैं तो कोई 'डिंगल' शब्द को अनियमित और गँवारू भाषा का द्योतक समझते हैं। कुछ विद्वान् 'पिंगल' के अनुकरण पर उसके विरोधी गुणों से युक्त भाषा को 'डिंगल' कहने की कल्पना करते हैं। जो हो, यह तो सर्व विदित है कि जिस प्रकार हिन्दी-साहित्य में ब्रजभाषा और अवधी का पर्याप्त भाण्डार है, उसी प्रकार 'डिंगल' का भी।

'डिंगल' विशेषतः चारणों की भाषा रही। राजस्थान की भाषा होने और राजस्थान में शताब्दियों से क्षत्रिय राजाओं की एकतंत्र सत्ता होने के कारण इसमें विशेषकर वीर-काव्यों की रचना ही हुई। चन्द बरदाई, पृथ्वीराज, दुरसा, बाँकीदास, सूर्यमल आदि अनेक महाकवियों ने इसके भाण्डार को भरा।

विशेषता—

(१) डिंगल में 'ल' का उच्चारण कहीं 'ल' और कहीं मराठी की तरह मूर्द्धन्य 'ळ' होता है। यह 'ळ' जब किसी शब्द के बीच में आता है, तब उसके स्थान पर 'ल' लिख देने से विशेष अन्तर नहीं पड़ता। यथा—

गाळ—गाली	गाल—घमंड
काळ—मृत्यु	काल—कल, दूसरा दिन
कुळ—वंश	कुल—सम्पूर्ण

(२) डिंगल की वर्णमाला में 'श' और 'ष' नहीं है। 'ष' का प्रयोग 'ख' की तरह होता है और 'श' के स्थान पर 'स' ही लिया जाता है। उच्चारण में इसे ठीक कर लिया जाता है।

यथा— 'अठै सुजस प्रभुता उठै, अवसर मरियाँ आय।'
यहाँ 'सुजस' का 'सुजश' उच्चारण होगा।

(३) डिंगल में कारकों की ये विभक्तियाँ प्रयुक्त होती हैं—

कर्त्ता	इ, उ	टोलइ, करहउ
कर्म	उ	संदेशाइ, कलेजउ
करण	इ	मुखि, कामिइ
सम्प्रदान	ए, नूँ, आँ	तव टोटै मोनूँ दया।
अपादान	हूँ, हूँत, हूँतो	पावाँ हूँत प्रणाम
सम्बन्ध	ह, हाँ, रौ	पण धण रौ किम पेखही
अधिकरण	इ, ए	हथलेवे ही मूठ किण

(४) सर्वनाम ये काम में आते हैं :—

	कर्ता	कर्म	सम्बन्ध
उत्तम पुरुष	हूँ	मूँ, मूझ	म्हारँउ, मो
मध्यम पुरुष	तूँ	तुम्ह	ताहरो
अन्य पुरुष	यह	एह	एह, ए

संबंध वाचक जो, जु। जो, जू। जास, जासु, जेह, जे
नित्य संबंध सोइ, सा। सोइ, सा। तास, तसु, तेह,ते

प्रश्न वाचक तथा अनिश्चय वाचक	कवण कवण, कुणगो, कोई कुण

(४) डिंगल में क्रियाओं के रूप कहीं अपभ्रंश, कहीं पश्चिमी हिन्दी और गुजराती के रूप से मिलते हैं।

(क) वर्तमान कालिक 'है' के अर्थ में 'अइ' प्रयुक्त होता है।

(ख) वर्तमान कालिक क्रियापद बहुधा इकारान्त होते हैं। यथा-- मरइ पलइइ भी मरई

(ग) मूल क्रिया के पीछे 'इद', 'यद' तथा 'इद' लगा कर सामान्य भूत काल के रूप बनाये जाते हैं। यथा, कहिद (कहा) वहिद (बहा)

(घ) भविष्यत काल के रूप दो तरह से बनाये जाते हैं (१) मूल क्रिया के अन्त में 'सी' 'स्यूँ' तथा 'स्यो' लगाकर (२) ला, ली तथा 'लो' लगाकर जैसे--

'मुहँपो लेसी कूण'

बूडेला (डूब जायगा)

(ङ) क्रिया के अन्त में इ, ई, अ, य, करि आदि प्रत्यय लगाकर पूर्व कालिक के रूप बनाये जाते हैं। यथा--

'आजको पाग उठाय'

दी कमल प्रिंटिंग प्रेस जोहरी बाजार जयपुर।